Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

16-1-67

विज्ञान-लोक

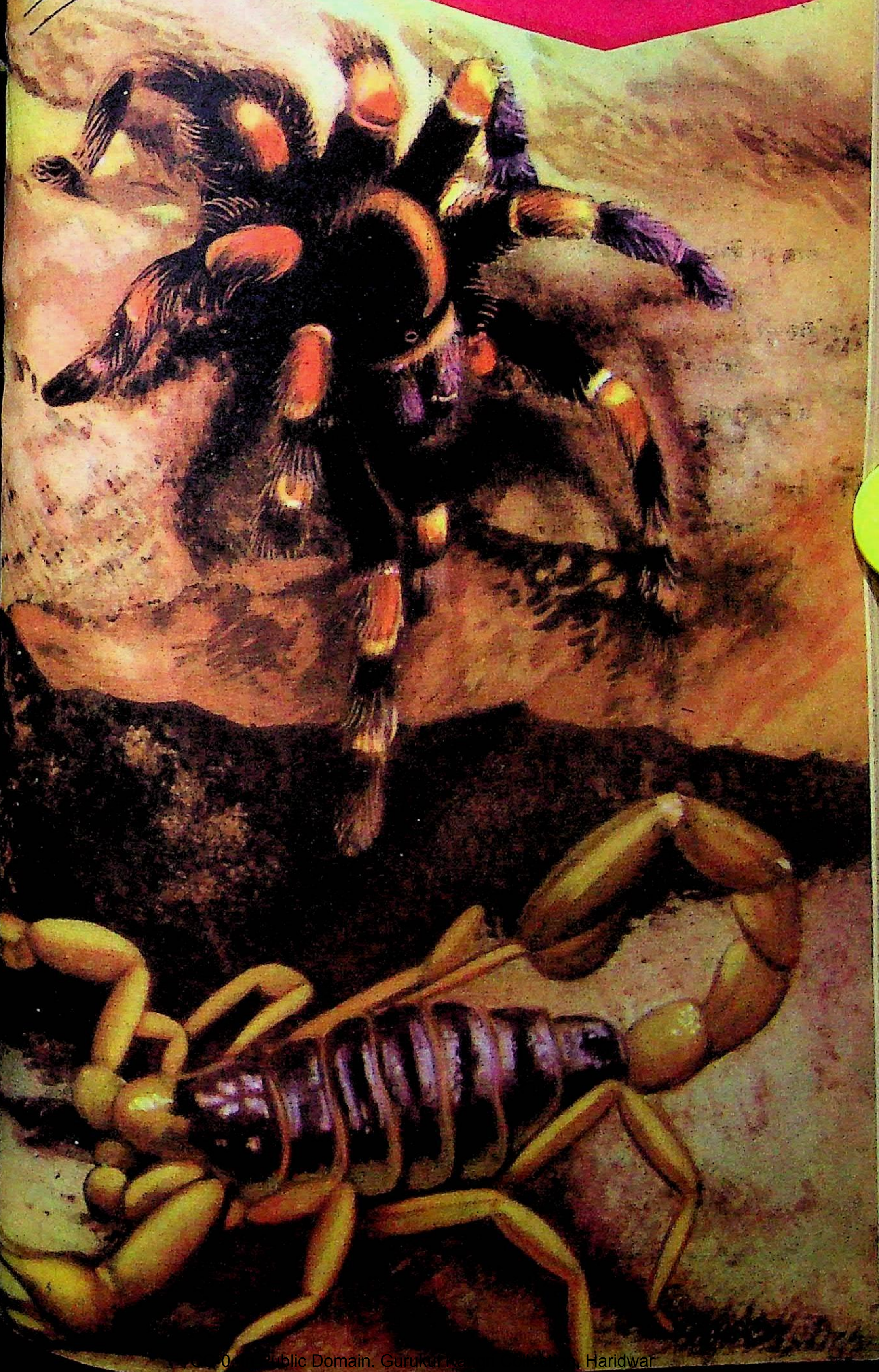

blic Domain. Guruku Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्दर पढ़िए

मकड़े, मकड़ियां और बिच्छू —कुमारी प्रमिला	३
आंवला —शशिभूषण शलभ	८
क्षय एक घातक रोग —रमेशप्रसाद शर्मा	१३
लाख का कीड़ा और उसका पालन —यमुनाधर पांडेय	१८
ट्रांस-यूरे नियम तत्त्व —अशोककुमार चौबे	२३
गोबर की खाद —सत्यकुमार	३१
प्रेरणाएं —डा. महेश्वरसिंह सूद	४०
लुई पाश्चर —डा. हर्ष प्रियदर्शी	५०

स्थायी स्तम्भ

वैज्ञानिक उपलब्धियां	४९
विज्ञान-क्लब	५३
इनाम लो	५५
तुम्हारी कलम से	५६

वर्ष ७ अंक ९

अपनी बात

कभी-कभी वैज्ञानिक यह अनुभव कर... है कि वह विज्ञान की प्रकृति समझ सकने... असमर्थ है, क्योंकि अपने को वह तथ्यों ... आंकड़ों में बुरी तरह उलझा हुआ पाता... तथा उनके महत्त्व को समझ सकने में ... मर्थ होता है। इस तरह विज्ञान एक 'बुद्धिया... मस्तिष्क के लिए समस्या का रूप धारण ... लेता है।

जब वैज्ञानिक अपने को तथ्यों ... आंकड़ों में उलझा हुआ पाता है, तो वह ... प्रश्नों का उत्तर देने की चेष्टा करता है... प्रश्न कठिन होते हैं, जैसे ब्रह्मांड के परे ... है? यह सृष्टि अस्तित्व में क्यों आयी? ... का प्रयोजन?

ऐसे प्रश्नों की कोई सीमा नहीं है... वैज्ञानिक अपने को सूक्ष्मतर की ओर मो... चला जाता है। वह कार्य और कारण ... सम्बन्ध स्थापित करने के लिए व्यग्र... उठता है।

जड़ की व्याख्या कर पाना कठिन ... है, किन्तु चेतन व्याख्या से परे लगता है... विकासवाद उन कथित रासायनिक क्रि... से हमारा परिचय कराता है जो जीव... उद्भव का कारण बनीं, परन्तु उनके सम... होने की प्ररणा के विषय में हमारा ... अधूरा है।

अन्तरिक्ष के छोर पर अबाध रू... प्रकाशपुंज लुप्त होते जा रहे हैं और ... में निरन्तर नया पदार्थ उत्पन्न हो रहा है... इस सबके पीछे वह एक नियम क्या है? ... इस तरह किसी सम्भावना पर पहुंचा ... सकता है?

विज्ञान-लोक प्रारम्भ से ही समन्वयी... के प्रयत्न मे रहा है। भविष्य में हम वि... के महान् विचारकों के चिन्तन को विज्ञान ... सन्दर्भ में प्रस्तुत करने का प्रयास करेंगे।

विज्ञान लोक

एक प्रति : ७५ पैसे

सम्पादक : शंकर मेहरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मकड़े, मकड़ियां और बिच्छू

एक सामान्य अध्ययन

कुमारी प्रमिला

यूनान की एक पौराणिक कथा के अनुसार लिडिया की युवती अरैक्न बुनाई करने में दक्ष थी। उसे अपनी कला का अभिमान था। एक बार वह देवी अथेना को प्रतियोगिता का निमन्त्रण दे बैठी। अरैक्न की इस धृष्ठता पर अथेना ने उसे मकड़ी बना दिया और शाप दिया कि वह तमाम उम्र जाले बुनती रहे।

मकड़े और मकड़ियां कीटों के अरैक्निडा (*Arachnida*) वर्ग के अन्तर्गत आते हैं। इस वर्ग के अधिकांश सदस्य जाले बुनने में दक्ष हैं। जिन तन्तुओं से ये जाले बुनते हैं, वे प्रकृति में अन्यतम पदार्थ हैं। इस वर्ग के जन्तु लगभग २६,००० जातियों में विभाजित हैं, फिर भी कीट विशेषज्ञों का मत है कि अभी और अधिक जातियों का पता लगाया जा सकता है। जन्तु-जगत के अन्तर्गत कीटों का यह वर्ग अनोखा है।

मकड़े और मकड़ियों के जाले धरती पर कहीं भी पाये जा सकते है। चार्ल्स डारबिन ने इन्हें अधिक संख्या में भूमध्य रेखा पर, अन्ध महासागर के सेंट पाल द्वीप पर लक्ष्य किया। प्रसिद्ध अंगरेज कीट विशेषज्ञ डा. टामस एच. सेवोरी ने हिमालय पर्वत पर, २२,००० फुट की ऊंचाई पर भी मकड़ों को जाल बुनते देखा है। इस सन्दर्भ में यह ज्ञातव्य है कि १८,००० फुट की ऊंचाई के बाद किसी अन्य जन्तु या वनस्पति का अस्तित्व सरलतापूर्वक सम्भव नहीं है। कुछ कीट अवश्य पाये जाते हैं। सेवोरी ने अपने निरीक्षण से यह निष्कर्ष निकाला कि इतनी ऊंचाई पर मकड़े अन्य छोटे-छोटे कीटों का शिकार करते हैं, या आपस में ही एक-दूसरे को भोजन के रूप में ग्रहण करते हैं। ये मकड़े एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते-आते रहते हैं। इसके लिए ये वायु के झोंकों पर निर्भर रहते हैं, या स्वयं के बुने हुए जालों पर चलते हैं।

मकड़े जाल बुनते हुए चलते हैं

मकड़े जब चलते हैं, तो जाल अवश्य बुनते हैं। खतरे के समय ये उसी जाल पर पीछे भाग आते हैं। यह भी पाया गया है कि अलग-अलग जाति के मकड़े अलग-अलग किस्म के जाल बुनते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

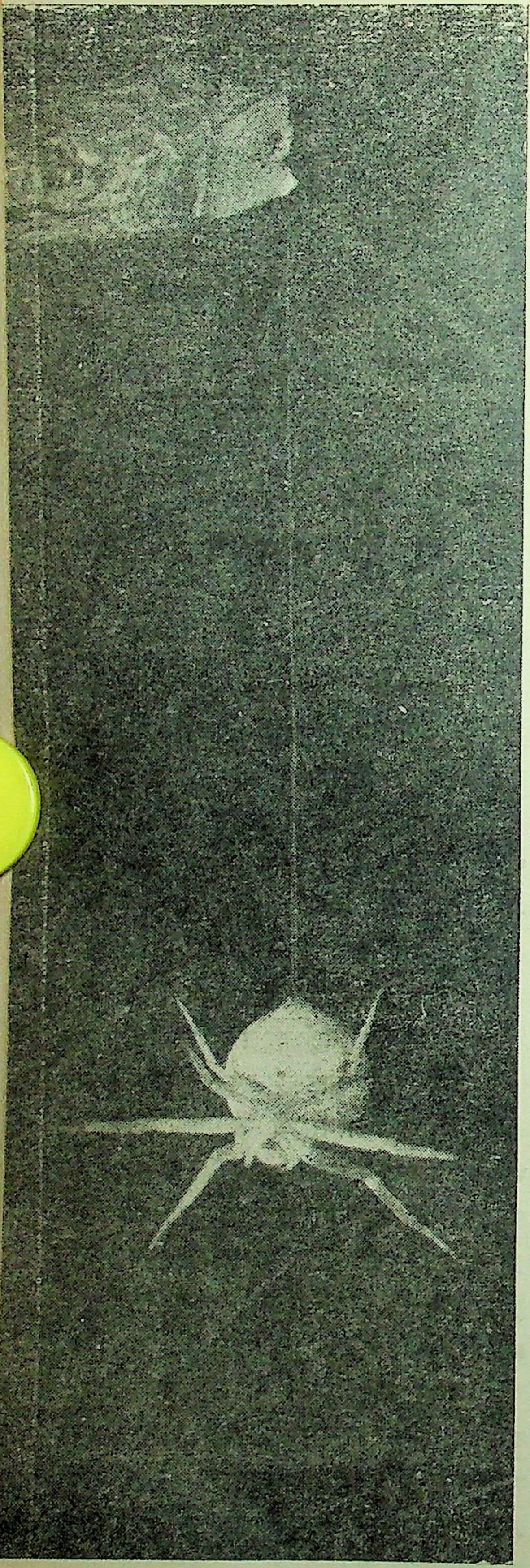

१९वीं शताब्दी के आरम्भिक चरण में फ्रांसीसी कीट विशेषज्ञ पी. ए. लेब्रिल ने मकड़ों के जालों का अध्ययन किया और यह निष्कर्ष निकाला कि इनके जाल मुख्यतः चार प्रकार के होते हैं—पहले प्रकार का जाल गोलाकार होता है जो समतल फैला रहता है; दूसरे प्रकार का जाल सहायक तन्तुओं से इधर-उधर खिंचा रहता है। एक अन्य प्रकार का जाल समतल बिखरा रहता है। ऐसे जाल बहुधा झाड़ियों में पाये जाते हैं। एक विशेष जाति का मकड़ा शुंडाकार जाल बुनता है। अक्सर ऐसे जाल किसी बिल के ऊपर होते हैं जिसमें छिपकर मकड़ा शिकार का इन्तजार किया करता है।

उष्ण कटिबन्ध के मकड़े

उष्ण कटिबन्ध में प्रायः नेफिला (*Nephila*) जाति के मकड़े पाये जाते हैं। ये इस कटिबन्ध के वृक्षों पर रहते हैं। इनके वृहत् जाल भी देखे गये हैं। कुछ जाल आठ फुट के दायरे में फैले रहते हैं। इन जालों की बुनाई अनोखी होती है। कभी-कभी छोटे पक्षी, चमगादड़ तथा कीट इन जालों में फंस जाते हैं। जब कोई जन्तु नेफिला के जाल में फंसता है, तो यह दौड़कर उसे पकड़ लेता है और पूरी तरह अपने कब्जे में कर लेता है।

मकड़ों और मकड़ियों की जाल बुनने की क्षमता विलक्षण है। यह भी एक अनोखी बात है कि प्रत्येक जाति के मकड़े या मकड़ियां अलग-अलग प्रकार का जाल बुनती हैं। कुछ के जाल बहुत महीन और समरूप होते हैं, तथा कुछ के रुक्ष।

घरों में पायी जाने वाली सामान्य मकड़ी थेरिडियन (*Theridion*) बड़ी ही विचित्र होती है। यह कमरे के कोने में अपना जाल

अपने बुने जाल पर नीचे बढ़ी चली आ रही क्रैब मकड़ी—जाति : मिसुमेना (*Misumena*)। आवश्यकता पड़ने पर यह अपने ही जाल पर चढ़ती हुई ऊपर पहुंच जायेगी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिकारी मकड़ों की मादा कई दिनों तक अपनी सन्तानों को अपनी पीठ पर लिये रहती है। जब शिशु चलने-फिरने लायक हो जाते हैं, तो पीठ पर से उतरकर इधर-उधर चले जाते हैं

बुनती है, और तन्तुओं पर अंडे लटका देती है। अगर कोई अंडा नीचे गिरने लगता है तो जल्दी से दौड़कर यह उसे पकड़ लेती है। इसकी आंखें बहुत तेज होती हैं और यह बड़ी फुरती से दौड़कर अपने शिकार को पकड़ती है।

बड़े-बड़े शिकारी मकड़े (आविकुलारिया (*Avicularia*) और यूरिपेमा (*Eurypelma*) आदि) दक्षिणी तथा दक्षिण-पश्चिमी अमरीका में पाये जाते हैं। बहुधा ये रात में शिकार करते हैं। इनके शिकार करने का ढंग अनोखा होता है। ये अपने शिकार की आहट पाकर या उसके स्पर्श से उस पर झपट पड़ते है, और उसे अपनी मजबूत पकड़ से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेहाल कर देते हैं। वह प्रायः चमत्कृत रह जाता है। ये केंचुए और चूहे के अतिरिक्त अन्य जन्तुओं का भी शिकार करते हैं।

जहरीले मकड़े

कुछ मकड़े जहरीले भी होते हैं। ये शिकार को पकड़कर उसे काट खाते हैं, और उसके शरीर में जहर प्रविष्ट करा देते हैं। थोड़े ही समय में इस जहर के प्रभाव से कीट (शिकार का शरीर) द्रव में परिवर्तित हो जाता है। मकड़ा इस द्रव को पी जाता है।

यह अक्सर देखा गया है कि बड़े मकड़ों में जहर तो होता है, पर वे उसका प्रयोग कम ही करते हैं, और वह अधिक प्रभावशाली भी नहीं होता। इसके विपरीत छोटे मकड़े

बगीचे में पाया जाने वाला मकड़ा आरजियोप औरन्तिया (*Argiope Aurantia*) बड़ा खूबसूरत जाल बुनता है

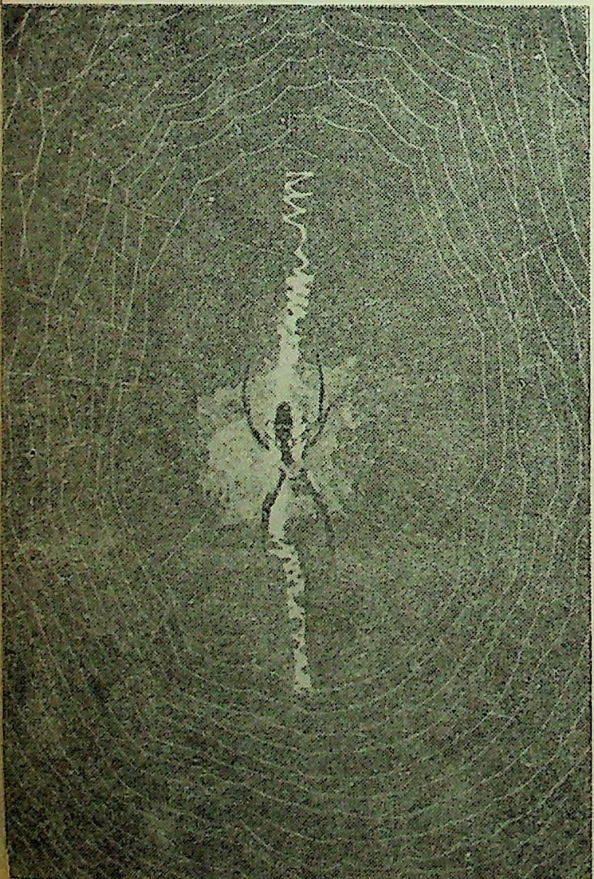

अधिकांशतः जहरीले होते हैं, और वे बहुधा अपने शिकार को काट खाते हैं। पर यह अवश्य है कि अधिकांश मकड़े या मकड़ियां जहरीली नहीं होतीं। केवल कुछ ही जातियां जहरीली होती हैं।

लात्रोदेक्तस मैक्तंस (*Latrodectus Mactans*) नामक मकड़ा सर्वाधिक जहरीला होता है। इसका विष वयस्क व्यक्ति पर फौरन प्रभाव डालता है। इसका उदर गोलाकार तथा काले रंग का होता है। उदर के नीचे लाल रंग का एक धब्बा होता है। अक्सर मादा ही काटती है।

अधिकांश मकड़ों की आठ चमकीली आंखें होती हैं। इनकी आंखों का आकार अलग-अलग होता है।

कुछ मकड़े रंग बदलते हैं। क्रैब मकड़ों के सम्बन्ध में पहले कीट विशेषज्ञों की धारणा थी कि ये सफेद फूल पर जब तक रहते हैं, तब तक इनका रंग सफेद रहता है, और जब पीले फूल पर रहने लग जाते हैं, तो इनका रंग पीला हो जाता है। लेकिन बाद की खोजों में कीट विशेषज्ञों ने इस धारणा को भ्रामक पाया। वास्तव में क्रैब मकड़े साल में दो बार रंग-परिवर्तन करते हैं। इस बात से कोई अन्तर नहीं पड़ता कि वे पीले फूल पर रहते हैं, या सफेद फूल पर।

फूलों पर रहने वाले मकड़े बड़े विचित्र ढंग से अपने शिकार पकड़ते हैं। ये बिलकुल गतिहीन होकर बैठे रहते हैं, और जैसे ही कोई कीट उड़ता हुआ इनके पास आता है, ये फौरन उस पर झपट पड़ते हैं।

बिच्छू : मृत्यु का प्रतीक

बिच्छू रेंगने वाला एक जहरीला जन्तु है जिसके डंक मारने से प्राणियों को अत्यधिक पीड़ा पहुंचती है, और कभी-कभी मृत्यु भी हो जाती है।

प्राचीन काल में लोग बिच्छू से बहुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते थे। वे इसे मृत्यु का प्रतीक मानते थे। मिस्र में प्राचीन काल में बिच्छुओं का प्रकोप काफी था, अतः लोगों ने इसके डंक के निदान की ओर ध्यान दिया। शीघ्र ही उन्होंने एक ऐसे जहर की खोज कर ली जो बिच्छू के जहर को प्रभावहीन कर देता था।

अफ्रीका के भूमध्यरेखीय क्षेत्र के अधिकांश बिच्छू आकार में १० इंच तक लम्बे होते हैं पर ये उतने खतरनाक नहीं होते। यदि इन्हें छेड़ा न जाय, तो ये अपना जीवन एकान्त में ही बिताना पसन्द करते हैं। बहुधा ये अपने शिकार की तलाश में रहते हैं। कभी-कभी ये अपनी जाति के दूसरे बिच्छुओं से उलझ जाते हैं। ये आपस में एक-दूसरे का भी शिकार करते हैं।

बिच्छू के बच्चे जब छोटे होते हैं, तो अपनी मां की पीठ पर सवार रहते हैं।

बिच्छू की कुछ सामान्य जातियां

बहुत से बिच्छू नुकसान पहुंचाने वाले नहीं होते। इनमें मैस्टिगोप्रोकेटस (*Mastigoproctus*) उल्लेख्य है। यह छोटे-छोटे कीड़ों का शिकार करता है। शेलेफर कैंक्रोआइड (*Chellefer Cancroide*) जाति का बिच्छू प्रायः पत्थरों आदि के नीचे छोटे-छोटे कीड़ों की तलाश करता रहता है। यह आकार में बहुत छोटा, चौथाई इंच का होता है। इस जाति के

मादा बिच्छू अपनी सन्तानों की सुरक्षा का विशेष ध्यान रखती है, और प्रायः उन्हें अपनी पीठ पर रखे रहती है

बिच्छू अपने घोंसले बनाने में बहुत नियमित होते हैं। ये घोंसले में ही बच्चे पैदा करते हैं और उनका पालन-पोषण करते हैं।

दरअसल मकड़े और बिच्छू में कोई प्रत्यक्ष मेल नहीं दीखता, लेकिन जातिगत अध्ययन के आधार पर इनके व्यवहारों में विलक्षण समानता मिलती है। वास्तव में दोनों ही शिकार करने वाले जीव हैं, और दोनों ही की कुछ जातियां मानव के लिए संकट उपस्थित कर देती हैं।

समुद्री मकड़ा : आठ पैरों वाला जन्तु

गोताखोर समुद्री मकड़े को अच्छी तरह पहचानते हैं। इस जाति के मकड़े के चार जोड़े पैर होते हैं जो अपेक्षाकृत काफी लम्बे होते हैं। इसका पेट बहुत छोटा होता है। मादा का मुंह लम्बाकार होता है और सिरे पर छोटा-सा मुंह रहता है।

किनारे के जल में पाये जाने वाले मकड़ों का आकार गहराई में पाये जाने वाले मकड़ों से छोटा होता है। ये बहुधा एलगी पर ही जीवन निर्वाह करते हैं, लेकिन कुछ मकड़े जेलीफिश से चिपके रहकर परजीवी का जीवन व्यतीत करते हैं। अंडे से जब बच्चा निकलता है, तो उसके छह पैर होते हैं। अतिरिक्त पैर विकास के साथ-साथ प्रकट होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आंवला

औषधीय महत्त्व का फल

शशिभूषण शलभ

आंवला भारत में बहुत लोकप्रिय फल है। भारत में प्रत्येक स्थान पर यह उत्पन्न होता है। इसे भाषा और स्थान के अनुसार अनेक नामों से सम्बोधित किया जाता है। संस्कृत में इसे आमलक, धात्री और अमृत-फल भी कहते हैं। हिन्दी में इसके कई नाम प्रसिद्ध हैं। इसे आमला, आंवड़ा, आंवरा, औड़ा और औंरा कहते हैं। बंगला में इसे आमलकी; मराठी में आवली, आंवला कांटा; गुजराती में अमली; मलयालय में अवला कम; तमिल में मैलिकाई; कन्नड़ में काया; तेलुगु में उसीरिकी; फारसी में आमलाह और लैटिन में एम्बिलक मेरो बलन (*Emblic myro balan*) कहते हैं।

परिचय

आंवला धानी रंग का एक छोटा-सा गोल फल है। इस पर खरबूजे की तरह धारियां बनी होती हैं। आंवले के रेशे उभरी हुई नसों के समान दिखायी देते हैं। पके हुए आंवले का रंग पीला और लाल होता है। इसके वृक्ष सारे भारत में पाये जाते हैं। आंवले के वृक्ष की ऊंचाई २५-४५ फुट के लगभग होती है। इसकी पत्तियां बहुत छोटी-छोटी होती हैं। पत्तियों का रंगरूप इमली की पत्तियों के समान होता है। इसके वृक्ष की छाल प्रतिवर्ष शुष्क होकर स्वयं बिखर जाती है। शाखाओं पर बहुत छोटे-छोटे फूल खिलते हैं जो बाद में फल का रूप धारण कर लेते हैं।

आंवला तीन प्रकार का होता है—कलमी आंवला, बीजू आंवला और जंगली आंवला। कलमी आंवला दूसरे आंवलों की अपेक्षा कुछ बड़ा फल होता है, परन्तु इसमें रेशे नहीं होते। इसलिए स्वाद के लिए तो अच्छा होता है परन्तु यह अधिक लाभदायक नहीं होता। बीजू आंवला कलमी आंवले की अपेक्षा कुछ छोटा फल होता है। इसमें रेशे भी पाये जाते हैं। यह पहले की अपेक्षा बहुत कुछ लाभदायक होता है। आंवलों में विशेषकर जंगली आंवले का प्रयोग किया जाता है। यह गुण, स्वाद में दूसरों की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ होता है। यह अधिकतर जंगलों में उत्पन्न होता है। इसके फल बहुत ठोस और छोटे होते हैं। इसमें रेशे भी बहुत घने पाये जाते हैं। उक्त गुणों के कारण अधिकतर इसी आंवले का विभिन्न रूपों में प्रयोग करते हैं।

वैज्ञानिक विश्लेषण

आंवला गुणप्रधान लाभदायक फल है। वैज्ञानिक दृष्टि से आंवले में शक्ति देने वाले सभी गुण पाये जाते हैं। आंवले का रासायनिक विश्लेषण इस प्रकार है—आंवले में प्रोटीन ०·५%, वसा ०·१%, लोहा ०·२% कैल्शियम ०·५%, जल ८१·२%, कर्बोज १४·१%, खनिज लवण ०·७%, फासफोरस ०·५% पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त विटामिन-सी पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होता है।

प्रकृति

आंवला स्वाद में कसैला, मधुर, चरपरा और गुण में शीतल, ग्राही, अम्लयुक्त तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है। आंवला वायु, पित्त, कफ के दोषों को नष्ट करता है, इसलिए इसे निर्दोष नाशक भी कहते हैं। इसके प्रयोग करने से मूत्र साफ आता है। इससे दूषित रक्त शुद्ध होता है और शरीर में शक्ति का विकास होता है। यह नेत्रों की ज्योति बढ़ाता है। आंवले को सुखाकर, कूट-पीसकर सिर धोने से बाल और अधिक काले होते हैं। इससे मस्तिष्क को भी ठंडक पहुंचती है। आंवले के विभिन्न रूपों में प्रयोग करने से अनेक रोग नष्ट होते हैं। पांडु, कामला, अतिसार, अजीर्ण, वात रक्त, नेत्ररोग, मूत्रकृच्छ, अग्निमान्द्य, बहुमूत्र, क्षय, धातु रोग, कब्ज, बेरी-बेरी, रक्त प्रदर, प्रमेह, श्वास कास, प्रदाह, अर्श, रक्ताल्पता, अम्लपित्त तथा वमन आदि विकारों में आंवला बहुत लाभ पहुंचाता है।

आंवले के प्रयोग

आंवला कच्चा, पका अथवा सुखाकर किसी भी प्रकार प्रयोग किया जा सकता है। पके हुए आंवलों को काटकर धूप में सुखा लेते हैं। इससे कई प्रकार के पौष्टिक खाद्य पदार्थ तैयार किये जाते हैं। आंवलों को कूटकर गुलकन्द, मुक्ता पिष्टी और मिश्री मिलाकर प्रतिदिन प्रातः सेवन करने से सिरदर्द नष्ट हो जाता है।

हमारे देश में प्राचीन काल से आंवले का शक्तिवर्द्धक ओषधियों के रूप में प्रयोग करते हैं। च्यवन ऋषि ने आंवले से बहुत ही लाभदायक, शक्तिवर्द्धक ओषधि च्यवनप्राश का निर्माण किया था, जिसका प्रयोग आज भी बहुत अधिक मात्रा में किया जाता है। च्यवनप्राश नवयुवकों और वृद्धों को शक्ति प्रदान करने वाली सबसे उत्तम ओषधि है। विद्यार्थियों को इससे मानसिक शक्ति प्राप्त होती है।

वृक्ष के अंग

आंवले के वृक्ष की सभी वस्तुएं बहुत लाभदायक और उपयोगी होती हैं। कच्चा, पका आंवला, पुष्प, हरी और सूखी पत्तियां, बीज, वृक्ष की छाल, सभी वस्तुएं उपयोग में लायी जा सकती हैं।

पत्तियों का प्रयोग

इसकी पत्तियों में टैनिन एसिड बहुत अधिक मात्रा में प्राप्त होता है। सूखी पत्तियों का चूर्ण बनाकर सेवन करने से अजीर्ण और अग्निमान्द्य के दस्त बन्द हो जाते हैं। इसकी पत्तियां मुंह के छालों, सड़े-गले घावों व फोड़े-फुंसियों को शीघ्र ठीक करने में बहुत उपयोगी हैं। इसके लिए पत्तियों का क्वाथ बनाकर प्रयोग करना चाहिये।

आंवले का पुष्प

इसमें गेलिक एसिड विशेष मात्रा में पाया जाता है। आंवले का पुष्प शीत वीर्य, मृदुरेचक गुण वाला होने के कारण पेचिश, आंव, खूनी दस्त, रक्तपित्त और खूनी बवासीर को ठीक करता है।

घरेलू उपयोग

आंवले का अचार बहुत स्वादिष्ट तथा लाभदायक होता है। दूसरे अचारों की खटाई स्वास्थ्य को हानि पहुंचाती है, लेकिन आंवले की खटाई से लाभ होता है। आंवले के अचार के लिए हरे आंवले को टुकड़ों में काट लेना चाहिये। शुद्ध सरसों के तेल में अचार की सामग्री मिलाकर आंवलों के साथ धूप में रख देते हैं। एक दिन धूप में रखने से दो-तीन दिन पश्चात् जब अचार बन जाता है, तो उसका सेवन करते हैं।

यह अचार स्वादिष्ट ही नहीं, बहुत लाभदायक भी होता है। इसके सेवन से कब्ज दूर होती है तथा भोजन शीघ्र पचता है। इससे भूख बढ़ती है और प्लीहा, यकृत के विकार ठीक होते हैं।

मुरब्बा

सबसे अधिक आंवले का प्रयोग मुरब्बे के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

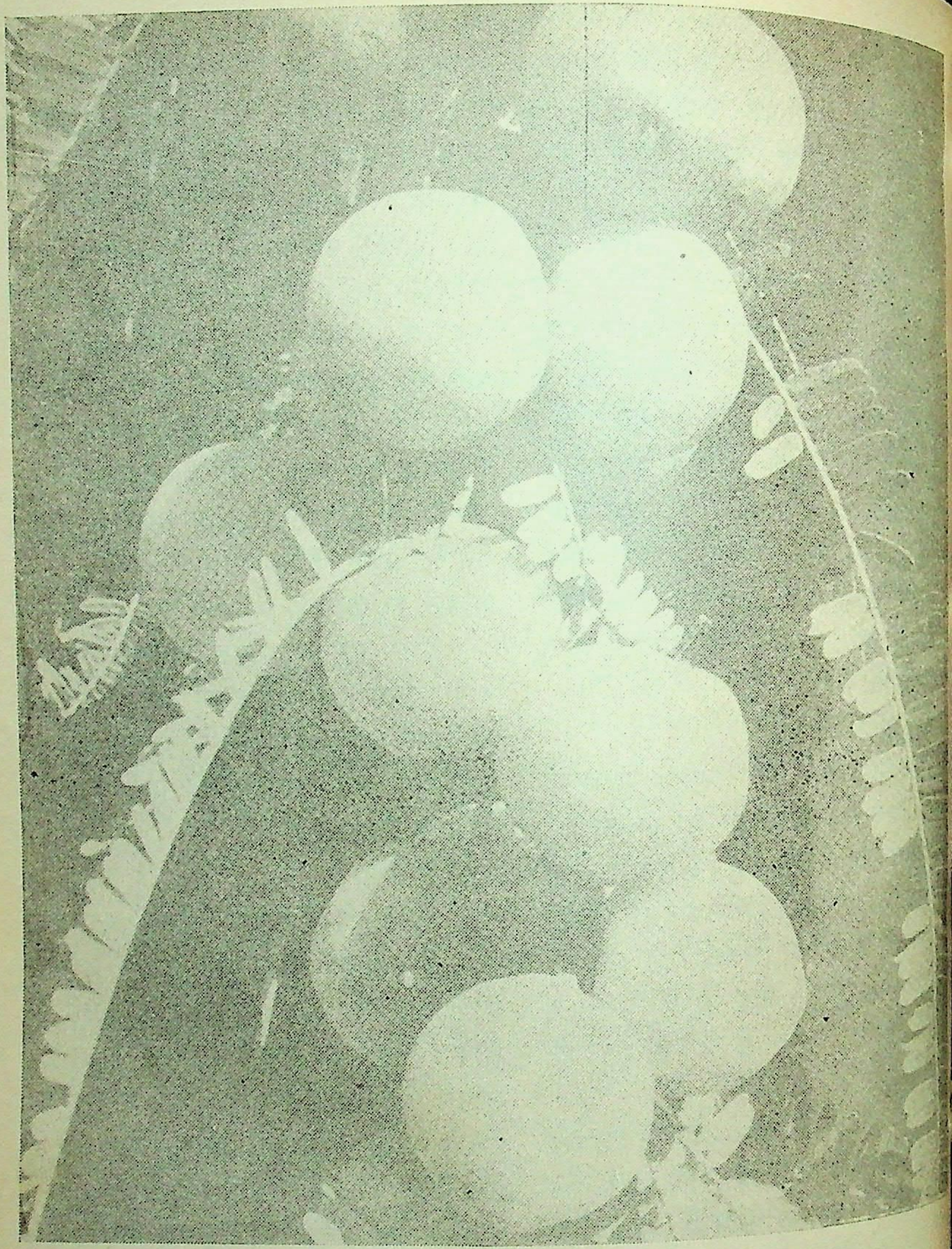

कलमी आंवला दूसरे आंवले की अपेक्षा कुछ बड़ा फल होता है

रूप में किया जाता है। आंवले का मुरब्बा विदेशों में भी बहुत प्रसिद्ध है। बड़े घरों में नास्ते के साथ आंवले के मुरब्बे को चांदी का बर्क लगाकर खाते हैं। मुरब्बा बहुत स्वादिष्ट, लाभदायक और शक्तिवर्द्धक होता है।

मुरब्बा बनाने की विधि

पके हुए आंवलों को जल से धोकर स्वच्छ कर लेते हैं। फिर किसी बारीक सलाई से दूर छेदते हैं।

छेदने के बाद उसे चूने के पानी में छोड़ देते हैं। पन्द्रह-बीस घंटे चूने के पानी में भिगोने के पश्चात् कुछ घंटे उन आंवलों को ठंडक में पड़ा रहने देते हैं। फिर उन्हें स्वच्छ जल से धोते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिश्री या चीनी की चाशनी बनाकर आंवलों को उसमें उबालते हैं। फिर ठंडा करने के लिए रख देते हैं। दूसरे दिन फिर आंवलों को उस चाशनी से निकालकर उसी में फिर चीनी की चाशनी तैयार करते हैं।

कम से कम तीन बार चीनी की चाशनी बनाकर आंवलों को उसमें पकाते हैं। ऐसा करने से आंवले भलीभांति चीनी पकड़ लेते हैं और उनका कसैलापन, खट्टापन जाता रहता है।

महिलाएं भी इसका प्रयोग कर सकती हैं। उनके खाने से श्वेतप्रदर, वायु, खांसी, श्वांस, रक्तपित्त आदि विकार नष्ट हो जाते हैं। मुरब्बे के साथ दूध पीने से बहुत शक्ति बढ़ती है।

गर्भ के समय आंवले का प्रयोग

गर्भ के समय अधिकतर स्त्रियों को बहुत कष्ट और परेशानी होती है। इस कष्ट से मुक्ति पाने के लिए आंवले का प्रयोग किया जाता है। पांच तोले आंवले को बीस तोले जल में खूब उबालते हैं। जब आठ तोले शेष रह जाय, तो उसमें शहद मिलाकर खिलाते हैं। इसके प्रयोग से सन्तान बिना किसी कष्ट के उत्पन्न होती है।

बालों के लिए एक प्रयोग

सूखे आंवले के टुकड़े रात्रि को पानी में भिगो देते हैं। सुबह उसके पानी से बाल धो लेते हैं।

कुछ सप्ताह ही ऐसा करने से लाभ अनुभव होने लगता है। इसके प्रयोग से बालों का गिरना, पकना बन्द हो जाता है और बाल घने, काले होते हैं। इससे मस्तिष्क को ठंडक प्राप्त होती है।

आंवले की चटनी

इसकी चटनी बहुत स्वादिष्ट और लाभदायक होती है। इसके खाने से भूख बढ़ती है। बनाने की विधि इस प्रकार है—हरे आंवलों को काटकर उसमें नमक, अदरक और प्याज (लहसन) मिलाकर पीस लेते हैं। प्रयोग करने से कब्ज अतिसार, आंव, पेचिश नष्ट होते हैं। रक्त शुद्ध होता है और भोजन रुचिकर बन जाता है तथा भूख भी बढ़ती है।

रोगों में उपयोग

सूखे आंवले को कूट-पीसकर चूर्ण बना लेते है। कुछ समय तक मूली के साथ इस चूर्ण को खाते रहने से मूत्र पथरी नष्ट हो जाती है। इसी चूर्ण को एक-एक तोला प्रतिदिन गाय के दूध से खाने पर वीर्य अधिक शक्तिशाली बनता है।

धातु रोग, स्वप्नदोष, मधुमेह रोग नष्ट होते हैं और शरीर में शक्ति आती है। रक्त शुद्ध होता है।

तोतले बच्चों की जबान को ठीक करने के लिए सूखे आंवले के चूर्ण को गाय के घी के साथ मिलाकर चटाते है। कुछ दिनों में तुतलाना ठीक हो जाता है।

आंवले के चूर्ण को तेल में मिलाकर मालिश करने से खुजली नष्ट होती है। फोड़े-फुंसी और गुमड़ियों को ठीक करने के लिए आंवले को छाछ (लस्सी) में घिसकर लगाना चाहिये। इससे शीघ्र लाभ होता है। जल जाने पर इसका प्रयोग किया जा सकता है।

पाडू रोग (पीलिया) में आंवले का चूर्ण छाछ के साथ सेवन करते है। गरमी के दिनों में बार-बार नाक बहने पर सूखे आंवले को घी में तलकर, पीसकर मस्तिष्क पर लेप करना चाहिये।

आंवले का नियमित सेवन करने से कब्ज दूर होती। नेत्रों की ज्योति बढ़ती है। कच्चे आंवले का प्रयोग करने से आंत्र और उदर के अनेकों विकार नष्ट होते हैं। यह कृमियों को शीघ्र नष्ट करता है। ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ENGLISH WORK BOOK

- A Modern Course for Writing as well as Reading through the medium of Hindi.
- The Course provides exercises in spelling, punctuation, very simple grammar, sentence-structure, picture-composition, story-writing, cross-word puzzles, letter-writing and comprehension.
- The exercises are fresh and original, varied and interesting, and are carefully *graded*.
- An interesting technique is used to teach the young pupil how to write sentences correctly. He learns by doing, and by doing *correctly*.
- Exercises are so arranged that even a slow child is sure to make *rapid progress*.
- Illustrations are given to attract the child's attention and to awaken his interest in the subject.
- The series is based upon a limited vocabulary of 1200 words.
- The Work Books are graded and are suitable for use in middle and high schools.

Book I......Price : Re. 0·80
Book II......Price : Re. 1·00
Book III.... .Price : Re. 1·20

For further enquiries please write to :

SRI RAM MEHRA & Co.
EDUCATIONAL PUBLISHERS, AGRA-3

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षय एक घातक रोग

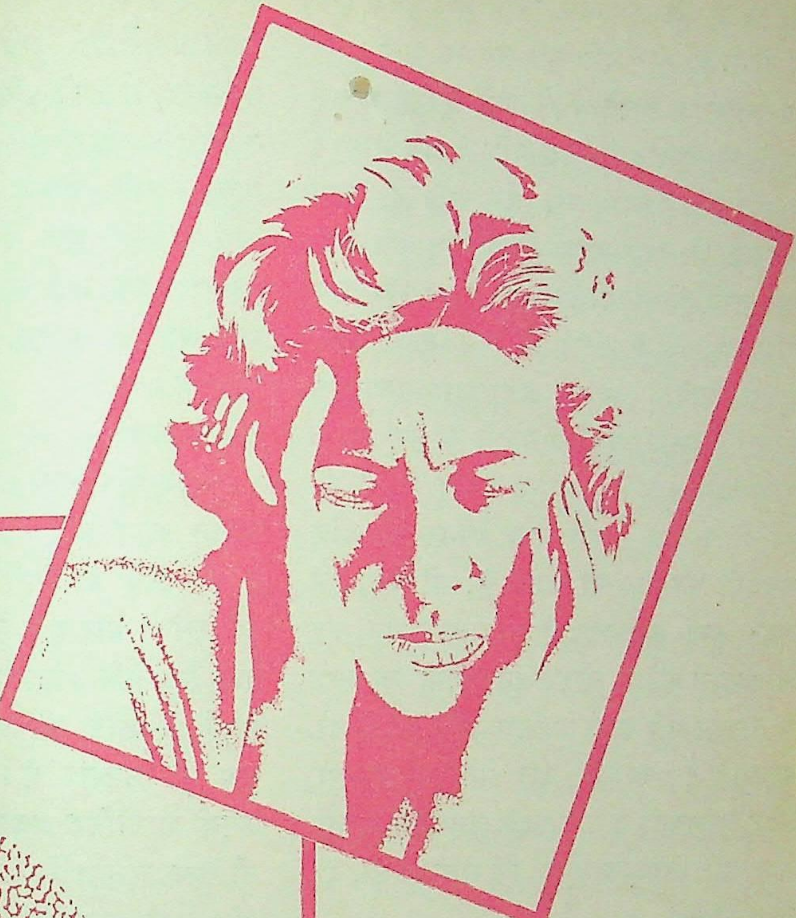

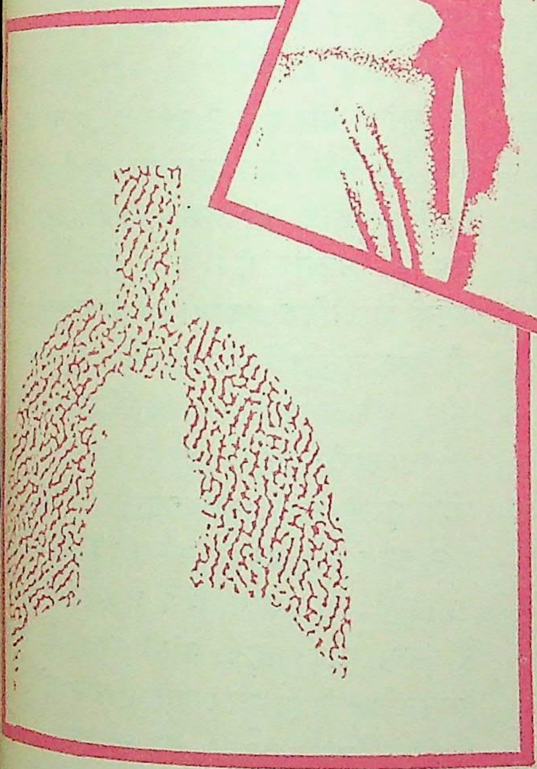

इलाज और रोकथाम : आशा और निराशा का आदिमयुगीन सन्दर्भ

रमेशप्रसाद शर्मा

क्षय रोग आदिम युग से मानवता को त्रस्त कर रहा है। यह शरीर का घुन है जो चुपके से आता है और शरीर को धीरे-धीरे खाता चला जाता है। रोग का पता उस समय चलता है जब काफी समय बीत चुकता है। आज से बीस साल पहले जब क्षय रोग का कोई इलाज नहीं था, क्षय की चपेट में आये हुए नौजवान बेटे को बचाने की झूठी उम्मीद में घर के बरतन-जेवर और जमीन बिकती ही चली जाती थी, उधर आशा और निराशा के झूले में झूलता हुआ लड़का आखिर एक दिन दम तोड़ देता था।

क्षय : एक अन्तर्राष्ट्रीय समस्या

क्षय भारत ही की नहीं, वरन् सम्पूर्ण संसार की एक बहुत बड़ी समस्या है, जिससे संसार के लगभग डेढ़ करोड़ व्यक्ति पीड़ित हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत में ही पच्चीस लाख से अधिक क्षय के रोगी हैं, और प्रति वर्ष लगभग पांच लाख व्यक्ति काल कलवित हो जाते हैं। आधुनिक चिकित्सा-पद्धति से जिस गति से क्षय से मरने वालों की संख्या कम हो रही है, उसी अनुपात में अभाग्यवश क्षयपीड़ित होने वाले व्यक्तियों की संख्या बढ़ रही है। इसका एक-मात्र कारण है दिन व दिन बढ़ने वाली गरीबी और हमारा अज्ञानमय संयमहीन जीवन। हमारा दुर्भाग्य यह है कि हम क्षय के सम्बन्ध में कुछ नहीं जानते। यदि किसी को एक्सरे अथवा किसी अन्य प्रकार की जांच करवाने की राय दी जाती है, तो वह उसे बहुत बुरा समझता है। डाक्टर पर वह अविश्वास करेगा और कहने लगेगा कि आज के डाक्टर पैसे ठगने के लिए हरेक को टी.बी. बतलाते हैं। आखिर जब रोग बढ़ जायेगा, और सम्भवत: कफ के साथ खून आने लगेगा, तब कहीं विश्वास होगा कि सचमुच टी. बी. हो चुकी है।

क्षय कैसे फैलता है ?

यह बहुत ही छोटे-छोटे जीवाणुओं से जिन्हें 'माइक्रो वैक्टीरियम ट्युबरकुलोसिस' कहते हैं, फैलता है। इनकी खोज जरमनी के राबर्ट काख ने १८८२ में की थी। इनका सिर गोल या नोकदार होता है और शरीर गठीला या दानेदार। इन पर केवल एक ही रंग का असर होता है, वह है कार्बोलफुखसिन, और एक बार रंग जाने पर फिर ये कभी रंगहीन नहीं होते। टी. बी. के जीवाणु ८० सें. तक ताप सह लेते हैं और अनेक जीवाणुमारकों से बच जाते हैं। बरसों बिना खाये-पीये जी सकते हैं और फेफड़ों को ज्यादा प्रभावित करते हैं। थूक की एक बूंद में ये पांच लाख की संख्या में रह सकते हैं। गन्दी आदतों में ये पलते तथा फैलते हैं। ये कमजोर आदमी पर काफी तेजी के साथ असर करते हैं। अनियमित जीवन, शराब, चरस आदि का सेवन, अत्यधिक परिश्रम, आराम न करना, रात को अधिक जगने, अच्छी खुराक न मिलने, कड़ी और खतरनाक चोटें लगने, कुकुर खांसी, चेचक, इंफ्लुएंजा, सरदी के रोग आदि के होने, स्त्रियों के बार-बार गर्भ धारण करने, क्षय के रोगी के बेहद सम्पर्क में आने आदि के कारण क्षय का होना सम्भव होता है।

क्षय के लक्षण

क्षय के लक्षणों को पहचान पाना बहुत कठिन कार्य है। साधारणत: यह धारणा है कि क्षय के रोगी को ज्वर, छाती में दर्द, खांसी और थूक में रक्त का आना अनिवार्य है। लेकिन यह गलत धारणा है, क्योंकि इनमें से कोई भी लक्षण न हो, फिर भी क्षय हो सकता है। यदि क्षय का रोगी अपनी शारीरिक अवस्था को ध्यानपूर्वक देखे, तो पता चलेगा कि इस रोग का साधारण और प्रथम लक्षण है बिना किसी प्रत्यक्ष कारण के कमजोरी अनुभव करना। इस दशा में रोगी घूमने-फिरने की इच्छा नहीं करता और उसे सदैव एक प्रकार की कमजोरी सताती रहती है। जिन लोगों में ये लक्षण प्रकट होते हैं, उन्हें थोड़ी-बहुत खांसी रहती है, गला खराब रहता है, ज्वर बहुधा शाम को होता है और किसी प्रकार की तकलीफ न पैदा करने के कारण जल्दी पकड़ में नहीं आता। रात को सोते समय क्षय के रोगी को पसीना आता है और वजन गिरता जाता है। धीरे-धीरे भूख कम होती जाती है। अन्तिम चिह्न कफ के साथ खून का आना है। कभी-कभी खांसी आते ही खून की उलटी होती है। हो सकता है कि इनमें से कोई एक लक्षण प्रत्यक्ष रहे और शेष प्रकट न हों, अथवा कई लक्षण एक ही साथ प्रकट हों।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षय की अवस्थाएं

क्षय रोग एक या दोनों फेफड़ों में हो सकता है। सबसे पहले फेफड़ों में कहीं-कहीं बहुत ही छोटे स्थान पर क्षय के लक्षण रोगी के एक्सरे में दीख पड़ते हैं जिसे इंफिल्ट्रेशन (infilteration) कहते हैं। यदि इस स्थिति में रोग की रोकथाम नहीं की जाती है, तो रोग के कीटाणुओं से प्रभावित स्थानों पर गलाव बढ़ता जाता है। इसे फेफड़े में दाग का होना कहा जाता है। जब गलाव अधिक बढ़ जाता है तो छेद निकल आते हैं, और इस स्थिति को फेफड़े में केवेटी (cavity) का होना कहते हैं।

क्षय की तीन प्रमुख अवस्थाएं

सुविधा की दृष्टि से चिकित्सकों ने क्षय को निम्नलिखित तीन श्रेणियों में विभाजित किया है—

प्रथम अवस्था

इस अवस्था में रोगी को (बिना अनुभव होने वाला) ज्वर रहता है। अनायास ही जब थर्मामीटर लगता है तब ज्वर के रहने का पता लगता है। कभी-कभी हलकी खांसी उठती है और थोड़ा-सा बलगम निकलता है। भूख-प्यास और वजन में कोई विशेष अन्तर नहीं आ पाता है। योग्य और अनुभवी डाक्टर ही रोग को पकड़ पाते हैं और थोड़े ही दिनों के इलाज से रोगी रोगमुक्त हो जाता है।

दूसरी अवस्था

इस अवस्था पर आते-आते रोगी को स्वयं ही सन्देह होने लगता है और डाक्टर भी रोग को सरलता से पहचान लेता है। खांसी भी तेज हो जाती है, बलगम अधिक निकलता है, हलका ज्वर सदैव बना रहता है जो शाम को बढ़ जाता है, सीने में हलका दर्द रहता है, रात को पसीना निकलता है, नाड़ी की गति तेज हो जाती है, रोगी कमजोरी महसूस करता है, और वजन घटता जाता है। अगर रोग का विधिवत इलाज करवाया जाता है, तो रोगी बच जाता है।

तीसरी अवस्था

क्षय के कीटाणु इस अवस्था में फेफड़े को क्षत-विक्षत कर चुकते हैं। खांसी बढ़ जाती है, भूख बिलकुल नहीं लगती, पैर और चेहरे पर सूजन आ जाती है, नींद ठीक से नहीं आती, रात को पसीना बहता है, बलगम बदबूदार निकलता है, रोगी हड्डी का ढांचा मात्र रह जाता है, तथा कमजोरी काफी बढ़ जाती है। इस अवस्था के रोगी को बहुत सावधानी की आवश्यकता रहती है।

चिकित्सा

क्षय का थोड़ा-सा भी सन्देह होने पर किसी अनुभवी डाक्टर की राय लेनी चाहिये। प्रारम्भिक अवस्था में यह रोग आसानी से पकड़ में नहीं आता, लेकिन पकड़ में आ जाय तो इसका इलाज बहुत ही आसान है। क्षय का सरल इलाज है चिन्तामुक्त रहना, अच्छी नींद सोना और डाक्टर द्वारा दी हुई ओषधि समय पर लेना। आज से लगभग २५-३० वर्ष पूर्व इस रोग की कोई दवा नहीं थी, पर आज तो कई प्रमुख दवाएं उपलब्ध हैं, जैसे स्ट्रेप्टोमाइसीन, पारा एमिनोसोलिसाइटिक-एसिड (पी. ए. एस.), आइसोनोक्रोनोटोनिक-एसिड-हाइड्राजाइड (आई. एन. ए. एच.), सायोकार्बाजोन, इथियानामाइड, साइक्लोसेरिन, पाइरोजीनामाइड आदि। विशेषकर प्रथम तीन ओषधियों का प्रयोग किया जाता है। स्ट्रेप्टोमाइसीन की खोज १९४४ में अमरीकी वैज्ञानिक, नोबल पुरस्कार विजेता सिल्मन ए. वाक्समन ने कुछ अन्य वैज्ञानिकों की सहायता से की थी। पेनीसीलीन की भांति यह भी एक फफूंदी (स्ट्रेप्टोमाइसीन ग्राइसस) से बनायी जाती है। जार्जेन लेहमैन ने पी. ए. एस. की खोज १९४६ में की थी। क्षय के जीवाणुओं की वृद्धि को रोकने की शक्ति इसमें है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आई. एन. एच. की खोज १९५१ में हुई थी। यह अपनी क्षमता और अल्प विषाक्तता के लिए प्रसिद्ध है। प्रारम्भ में यह ४८ रुपये प्रति सैकड़े के हिसाब से बिकती थी, किन्तु आज काफी सस्ती मिल जाती है।

सबसे परेशानी की बात यह है कि इस रोग के एक बार हो जाने पर महीनों बाद यह नियन्त्रण में आता है। कम से कम ८-१० महीने तो लग ही जाते हैं। क्षय के रोगी के लिए सुरुचिपूर्ण, विटामिनयुक्त भोजन, खुली हवा, नियमित विश्राम, मानसिक प्रसन्नता और आधुनिक ओषधियों की आवश्यकता है।

शल्य चिकित्सा

आज की क्षय-सम्बन्धी सूक्ष्म शल्य क्रियाओं का विकास पेविया के सर्जन कार्लो फार्लानी की कृत्रिम बातिल वक्ष की तकनीक की खोज से हुआ। इन सब क्रियाओं का उद्देश्य क्षयग्रस्त फेफड़े को वातरहित करके उसे आराम देना और उसके रुग्ण भाग को स्वस्थ होने का अवसर देना है। इसी प्रकार की अन्य क्रिया द्वारा फ्रेनिक नर्व में अल्कोहलडालकर फ्रेनोअल्कोहोलिस्टेशन कर दिया जाता है अथवा उसे कुचलकर डायाफ्राम को क्रियाशून्य कर दिया जाता है। कैवर्नोस्टामी शल्यक्रिया द्वारा सीधे फुफ्फुस के भीतर के क्षयग्रस्त भाग को पूरी तरह साफ किया जाता है और ओषधियां आदि डाली जाती हैं।

बी. सी. जी. की कहानी

प्रयोगशाला में लगातार २३ दिनों तक पशुजातीय काक जीवाणु को ग्लिसरीन तथा गो-पित्त में उबाले हुए आलुओं में बार कल्चर तथा सब-कल्चर क्रिया द्वारा नपुंसक जीवाणु में परिवर्तित किया गया। इसका नाम बैसिलस कामेट्टे गुएरिन (बी. सी. जी.) रखा गया। पहली बार बी. सी. जी. छह मिलीग्राम की मात्रा में क्षय से पीड़ित मां-बाप के एक बच्चे को पेरिस में दिया गया। परिस्थितियों के अनुसार बच्चे के क्षयग्रस्त होने की पूरी सम्भावना थी, किन्तु फिर भी वह अपनी सामान्य स्थिति में पाया गया। यही बी. सी. जी. की पहली सफलता थी। इसके बाद अनेक बच्चों को बी. सी. जी का टीका दिया गया। पैस्ट्युअर इंस्टीट्यूट बी. सी. जी. के टीके बनाकर बाहर भेजने लगा जिसका उपयोग अर्जेंटाइना, क्यूबा, पोलैंड आदि देशों में होने लगा। किन्तु कुछ जगह इसका विरोध भी किया गया। स्विट्जरलैंड, आस्ट्रिया, फ्रांस में बी. सी. जी. के प्रयोग का काफी विरोध हुआ। पर राष्ट्रसंघ द्वारा संचालित एक जूरी ने अपना फैसला दिया कि बी. सी. जी. निश्चित रूप से लाभदायक थी।

इसी बीच लूबेक (जरमनी) की दुखान्त घटना हुई। लूबेक में दिसम्बर १९२९ और अप्रैल १९३० के बीच २५२ बच्चों को बी. सी. जी. के टीके दिये गये। उनमें से क्षय संक्रमण के कारण ७१ मर गये, २७ बीमार पड़े और ५ की हालत बहुत नाजुक हो गयी। खोजबीन के पश्चात् मुकदमा चला। अन्त में यह पाया गया कि प्रयोगशाला की भयंकर भूल के कारण यह दुर्घटना हुई। प्रयोगशाला के अधिकारी को सजा हुई, और तब से अनेक बच्चों को बी. सी. जी. का टीका दिया जा रहा है। इसकी उपादेयता निर्विवाद सत्य सिद्ध हो चुकी है।

इलाज घर में या सेनेटोरियम में

इसका इलाज आजकल सरलतापूर्वक घर में भी किया जा सकता है, लेकिन इसके लिए बहुत कुछ सावधानियां बरतनी पड़ती हैं। मरीज का हवादार कमरा बिलकुल अकेला होना चाहिये, उसमें पलंग, एक मेज, आराम करने की कुर्सी तथा खाने के बरतन होने चाहिये। मरीज के उपयोग की वस्तुएं, खाने के बरतन, तौलिया, बिस्तर, थर्मामीटर, पुस्तकें आदि को अलग ही रखा जाय। उसके थूक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...आदि का उचित ढंग से परिष्कार और ...निस्तारण होना चाहिये। दोपहर को ...करीब दो घंटे रोज सोना आवश्यक है। यदि ...नींद न आये, तो भी पलंग पर पड़े रहना चाहिये। इस बीच किताब पढ़नी या बातचीत नहीं करनी चाहिये। वास्तव में रोगी को शारीरिक और मानसिक आराम की जरूरत होती है। किताब पढ़ने या बातचीत करने से निश्चय ही मस्तिष्क पर दबाव पड़ेगा जो दुर्बलता बढ़ायेगा। अन्य किसी समय सरल साहित्य पढ़ा और रेडियो आदि सुना जा सकता है। जब बुखार आना खत्म हो जाय, तब सुबह-शाम थोड़ा-सा टहला जा सकता है। क्षय-रोगी एक तरह से हृदय थका हुआ होता है। अतः थकान से बचना चाहिये। प्रातः छह बजे बिस्तर से उठना और शाम को आठ बजे सो जाना आवश्यक है। इसमें जितना आराम किया जा सके उतना ही अच्छा है। प्रायः रोगी को पहाड़ पर ले जाते हैं। यह भी एक अच्छी बात है। इससे वातावरण-परिवर्तन तो होता ही है साथ-साथ रोगी का स्वास्थ्य भी सुधरता है। जिन रोगियों को अस्पताल की चिकित्सा की सुविधा मिल सके वे उस सुविधा का सदुपयोग करें, क्योंकि आरोग्य निवास(सेनेटोरियम) एक वातावरण है, संस्था नहीं। क्षय के रोगियों की संख्या को देखते हुए प्रत्येक का आरोग्य निवास में स्थान पाना कठिन है, अतः घर पर सावधानीपूर्वक किया गया इलाज सस्ता रहता है, और अच्छा भी।

क्षय आज एक विश्वव्यापी समस्या है। अमरीका, इंग्लैंड, रूस, चीन, जापान, कहीं भी क्षय के रोगी मिलेंगे। एक तरह के लक्षण, एक-सी ही शारीरिक दुर्बलता, और एक-सा ही परिणाम। इस पर भौगोलिक सीमाओं का बन्धन नहीं है और न जलवायु और सामाजिक भेदभाव का। जो देश आर्थिक रूप से उन्नत हो चुके हैं, उनमें इस रोग का फैलना कम होता चला जा रहा है। ऐसा केवल उन्नत जीवन स्तर तथा रोक-थाम के पूर्ण विकसित वैज्ञानिक तरीके अपनाने के कारण है। आजकल इससे जल्दी निरोग होने के लिए अनेकानेक प्रयोग किये जा रहे है, और वह दिन दूर नहीं जब डाक्टर कहा करेंगे कि थोड़ा-सा क्षय हो गया है, एक इंजेक्शन या गोली में ठीक हो जायगा। फिर भी क्षय का आदिमयुगीन सन्दर्भ आज कायम है। यद्यपि सभ्यता पर्याप्त विकसित हो चुकी है, पर यह विकास कुछ क्षेत्रों तक ही सीमित है। हां, यह स्वीकार्य है कि अर्द्ध-विकसित देशों में विकास कार्य शीघ्रता से सम्पन्न हो रहे हैं, और यह असम्भव नहीं जब क्षय का विश्व से पूर्ण उन्मूलन हो जायगा। ●

सल्फा औषधियां : एक चमत्कार

सल्फा ओषधियों के आविष्कार से पूर्व निमोनिया से मृत्यु साधारण बात थी। चिकित्सक केवल रोगी की परिचर्या कर सकते थे, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं। सल्फा ओषधियों के आविष्कार के बाद निमोनिया एक साधारण रोग रह गया। वास्तव में इन ओषधियों का आविष्कार एक चमत्कार था।

सल्फा ओषधियों को जीवाणु स्तम्भक ओषधियां कहते हैं। ये जीवाणुओं पर न विषैला प्रभाव डालती हैं, न उन्हें मारती हैं। ये उनकी वृद्धि को रोक देती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाख का कीड़ा और उसका पालन

यमुनाधर पांडेय, एम. एस-सी.

मानव को लाभ पहुंचाने वाले कीड़ों में लाख के कीड़े का स्थान प्रमुख है। लाख का उपयोग मानव सभ्यता के आरम्भ से ही हुआ है। आधुनिक युग में इसका सबसे अधिक उपयोग ग्रामोफोन रिकार्ड बनाने में होता है। इसके अतिरिक्त यह विभिन्न कार्यों में जैसे चूड़ियां, वार्निश, पालिश, छापने की स्याही बनाने में, सील बन्द करने में, शीशे में पालिश करने में, फेल्ट हैट के कपड़े में कड़ापन लाने के लिए, आभूषणों के अन्दर भरने के उपयोग में आती है। भारतवर्ष में प्रतिवर्ष लगभग ४२,००० मेट्रिक टन लाख उत्पन्न होती है जो उत्पादन की दृष्टि से संसार के उत्पादन का लगभग तीन चौथाई है, और निर्यात से लगभग १५ करोड़ रुपये की विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है। देश के विभिन्न क्षेत्रों में प्रमुख लघु-उद्योग के रूप में इसकी खेती की जाती है और यह लगभग १½ लाख परिवारों की जीविका का साधन है। अतः आर्थिक दृष्टि से लाख का उत्पादन बहुत महत्त्वपूर्ण है।

लाख क्या है ?

संसार के अन्य देशों पाकिस्तान, बर्मा, श्रीलंका, चीन, थाइलैंड इत्यादि में भी थोड़ा-बहुत लाख का उत्पादन होता है। भारत में लाख का उत्पादन बिहार के छोटा नागपुर क्षेत्र में, मध्यप्रदेश के पूर्वी जिलों में, बंगाल, बम्बई, उत्तरी उड़ीसा, आसाम तथा उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर जिले में प्रमुख रूप से होता है। कम उत्पादन वाले क्षेत्रों में मद्रास, मैसूर, राजस्थान तथा पंजाब के नाम उल्लेखनीय हैं।

लाख एक किस्म की पपड़ी है जो कीड़े द्वारा पैदा की जाती है, जिसे लाख का कीड़ा (लैसीफर लैका) कहते हैं। यह कीड़ा पलास, बेर, पीपल, बरगद, बबूल, कुसुम इत्यादि पेड़ों की कोमल टहनियों का रस चूसता है और अपनी लक्षग्रन्थियों द्वारा इस रस को उद्यास (रेजिन) के रूप में परिवर्तित कर देता है, जो द्रव के रूप में बाहर निकलता है और वातावरण के सम्पर्क में आने पर सूखकर कठोर तथा ठोस बन जाता है। यह लाख प्रायः मादाएं अपने शरीर के चारों ओर प्राकृतिक शत्रुओं तथा प्रतिकूल मौसम से बचने के लिए बनाती हैं।

कीड़े का पालन : जीवन-इतिहास

भारतवर्ष में इस कीड़े की वर्ष भर में प्रायः दो पीढ़ियां होती हैं। पहली पीढ़ी के शिशु ग्रीष्म ऋतु में जून से लेकर अगस्त तक निकलते हैं। इस पीढ़ी से शीत ऋतु में फसल तैयार होती है जिसे 'कार्तिकी' फसल कहते हैं। दूसरी पीढ़ी के शिशु अक्तूबर से जून तक निकलते हैं जिनसे ग्रीष्म ऋतु की फसल 'बैसाखी' मिलती है। कीड़े के जीवन-चक्र को भोजन तथा जलवायु बहुत सीमा तक प्रभावित करते हैं। कुसुम के पेड़ों पर आश्रित रहने वाले कीड़ों की फसल को 'जेटी' तथा 'अगहनी' कहते हैं। फसलों के नाम हिन्दी महीनों पर आधारित हैं। 'कार्तिकी' तथा 'बैसाखी' फसलों को 'रंगीनी' तथा 'जेठी' एवं 'अगहनी' फसलों को 'कुसुमी' कहते हैं।

सभी फसलों में नर तथा मादा पाये जाते हैं। इनकी संख्या विभिन्न फसलों में विभिन्न होती है, लेकिन यह प्रायः १ (नर) और ३ (मादा) के अनुपात में होती है। लाख का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दन अधिकतर मादा की संख्या पर निर्भर करता है, क्योंकि नर बहुत कम लाख बनाते हैं। अतः अच्छी फसल के लिए मादा प्रौढ़ों की संख्या जितनी अधिक हो, अच्छा है।

प्रौढ़ नर गुलाबी रंग का, १.३ मि. मी. लम्बा होता है। नर दो प्रकार के होते हैं—पंखधारी तथा पंखहीन। पंखधारी नर चमकीले लाल रंग का होता है और श्रृंगिकाएं तथा टांगें पीले-भूरे रंग की होती हैं। पंखधारी नर प्रायः ग्रीष्म ऋतु में तथा पंखहीन नर शीत ऋतु में पाये जाते हैं। इनके मुखभाग नहीं होते हैं, अतः ये ३-४ दिनों तक ही जीवित रहते हैं और इन दिनों में मादाओं से मैथुन करते रहते हैं। प्रौढ़ मादा गहरे लाल रंग की, १.५ मि. मी. लम्बी, पंख, टांगें और नेत्रविहीन होती है तथा अपनी शुंड को टहनी में गड़ाकर कोशिका-रस चूसती रहती है। मादा चल-फिर नहीं सकती है। वह एक ही स्थान पर चिपकी हुई लाख उत्पन्न करती रहती है।

विपेचन के पश्चात् मादा २५०-३५० अंडे लाख के खोल में देकर मर जाती है। मादा द्वारा बनाया गया यह खोल उसी के लिए समाधि बन जाता है। अंडों की संख्या वातावरण के तापक्रम पर बहुत निर्भर करती है। ग्रीष्म ऋतु में १७° सें और शीत ऋतु में १५° सें से कम तापक्रम होने पर मादा अंडे देना बन्द कर देती है। अंडे निषिक्त तथा अनिषिक्त, दोनों प्रकार के होते हैं और दोनों से नर तथा मादा कीट उत्पन्न होते हैं। अंडों से शिशु कुछ ही समय बाद निकल आते हैं।

नवजात शिशु बहुत छोटे तथा गुलाबी रंग के होते हैं। इनमें टांगें, आंखें तथा श्रृंगिकाएं उपस्थित रहती हैं। ये शिशु समूहों में रहते हैं तथा मन्द गति वाले होते हैं। मादा के कोष्ठक से निकलने के बाद ये पेड़ पर, ऊपर की ओर चढ़ना प्रारम्भ कर देते हैं। कोमल टहनियों तक पहुंचने के बाद स्थिर हो जाते हैं और चिपककर रस चूसने लगते हैं तथा अपने शरीर के चारों ओर लाख बनाना प्रारम्भ कर देते हैं। मुख भाग, दो श्वासरन्ध्रों एवं गुदा को छोड़कर शेष शरीर को पूरी तरह से ढंक लेते हैं। एक लाख का कोष्ठक कीड़े की आयु के अनुसार ही बढ़ता जाता है। प्रौढ़ होने के लिए शिशु तीन बार निर्मोक करता है और प्रत्येक रूप का समय वातावरण की दशाओं, यथा तापक्रम, आर्द्रता और भोजन इत्यादि पर निर्भर करता है। प्रथम निमोचन के पश्चात शिशु की टांगें, आंखें और शृंगिकाएं समाप्त हो जाती हैं। प्रारम्भिक अवस्था में नर और मादा में भेद करना कठिन है, लेकिन अंडाज्जन के लगभग दो सप्ताह बाद कोशिकाओं के आधार पर लिंग भेद किया जा सकता है। नर की कोशिकाओं में वृद्धि लम्बाई में तथा मादा कोशिकाओं में लम्ब-रूप होती है। तीसरे निर्मोक के पश्चात नर कीट कोशित (प्यूपा) अवस्था में पहुंच जाता है और फिर प्रौढ़ बनकर बाहर निकल आता है। टांगें, आंखें, शृंगिकाएं तथा पंख (पंखहीन नरों को छोड़कर) पूर्ण विकसित होते हैं। मादा प्रौढ़ में अन्तिम निर्मोक के पश्चात जननांग परिपक्व हो जाते हैं और नर मादा को निषेचित कर देता है। निषेचन के पश्चात मादा द्वारा लाख उत्पादन करने की क्षमता बहुत बढ़ जाती है, और प्रौढ़ मादा का शरीर तथा उत्पादित लाख की मात्रा नर की अपेक्षा कई गुना अधिक बढ़ जाती है।

लाख का उत्पादन

बहुत प्राचीन काल से ही आदिवासी जंगलों से लाख एकत्र करते रहे हैं। एकत्र करने की विधि बहुत ही दोषपूर्ण है और इससे कीट तथा पेड़ों को बहुत हानि पहुंचती है। कीड़ों की संख्या कम हो जाती है और पेड़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

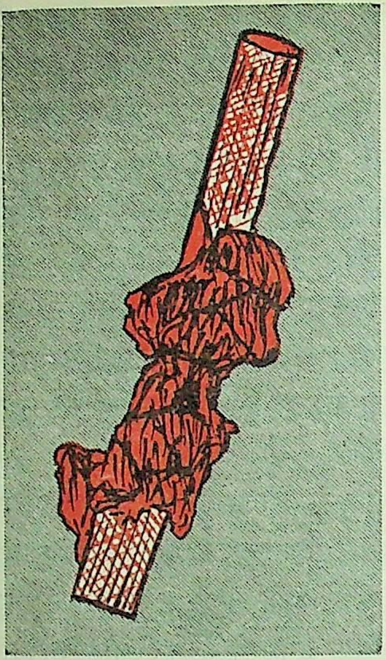

टहनी पर लगी हुई लाख

सूख जाते हैं, फलतः उत्पादन बहुत कम होता है।

आधुनिक विधि वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित है। इसको विभाजन-विधि कहते हैं। इस विधि में पेड़ों पर एक फसल लेने के बाद कुछ दिनों तक विश्राम करने के लिए छोड़ देते हैं जिससे पेड़ों के सूखने का डर नहीं रहता है, साथ ही पैदावार भी बढ़ जाती है। कुसुम के पेड़ों को जो धीरे-धीरे बढ़ते हैं, चार बराबर भागों में बांट लेते हैं तथा अन्य पेड़ों (पीपल, बरगद, बबूल आदि) की संख्या को ३:१:३ में विभाजित कर लेते हैं। कुसुम के प्रत्येक भाग के पेड़ों में एकान्तर जेठी तथा अगहनी फसलें उगाते हैं। इससे प्रत्येक पेड़ को १८ मास का विश्राम मिल जाता है। अन्य पेड़ों के दो बड़े भागों में एकान्तर वर्षों में 'बैसाखी' फसल और छोटे वाले भाग में प्रति वर्ष 'कार्तिकी' फसल उगाते हैं।

पेड़ों की छंटाई

लाख की खेती करने से पहले यह ध्यान रखना चाहिये कि जिन पेड़ों पर लाख की खेती की जाय, उन पर पर्याप्त मात्रा में कोमल टहनियां मौजूद हों जिससे कीड़ों का अच्छी तरह से भोजन मिल सके। अगर ऐसा नहीं है तो पेड़ों की छंटाई कर देनी चाहिये। छंटाई विशेषकर बेर के पेड़ के लिए आवश्यक होती है क्योंकि उसके बाद शीघ्र ही कोमल प्रारोह निकलने प्रारम्भ हो जाते हैं। साधारणतया पलास और कुसुम के लिए छंटाई की आवश्यकता नहीं होती है। छंटाई हलकी हो और इस प्रकार की गयी हो जिससे नये प्रारोहों के निकलने के लिए पर्याप्त स्थान मिल सके। छंटाई करते समय १ इंच से कम व्यास वाली, मरी हुई तथा रोगी टहनियों को काट देना चाहिये। बेर के पेड़ों की छंटाई का

पंखहीन प्रौढ़ नर

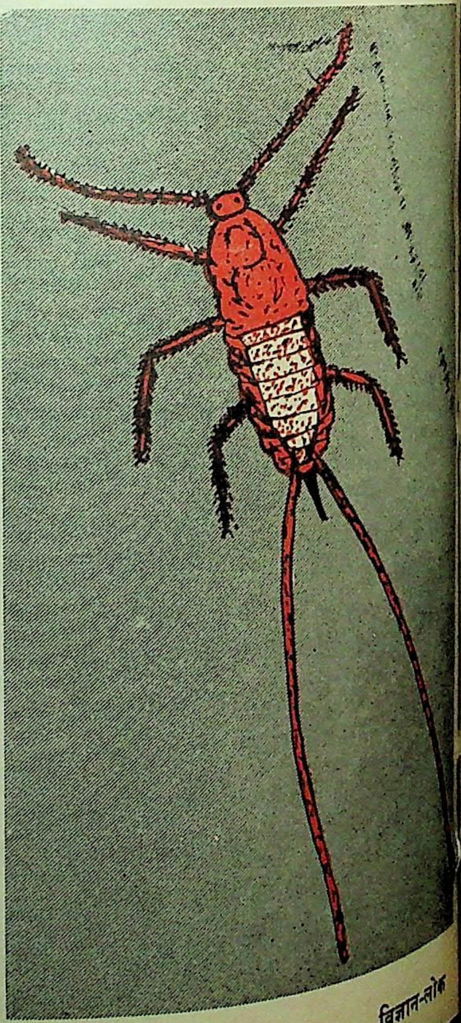

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उचित समय 'कार्तिकी' की फसल लेने के लिए मई तथा 'बैसाखी' की फसल लेने के लिए मध्य अप्रैल है।

पेड़ों में लाख के कीड़े रोपना

अच्छी जाति की लाख की टहनी (ब्रूड लैक) लाकर पेड़ों की टहनियों के ऊपर बांध देते हैं। लाख की इन टहनियों में कीड़े के अंडे उपस्थित रहते हैं। लाख की टहनी की लम्बाई सुविधानुसार १५-३० सें. मी. हो सकती है, और अंडों से शिशु निकलने के समय या इससे कुछ समय पहले इसे पेड़ों पर रोपना चाहिये। लाख की टहनी स्वस्थ, परजीवी और हिंस्रजीवी जीवधारियों से मुक्त होनी चाहिये। लाख की टहनियों को एक या दो सप्ताह बाद खोलकर एकत्र कर लेना चाहिये, नहीं तो ये हानिकारक जीवों द्वारा नष्ट कर दी जाती हैं। इस लाख को 'फकी' लाख कहते हैं।

कटाई

लाख की कटाई अथवा लाख की टहनियों को एकत्र करना, क्रमबद्ध तथा उपयुक्त समय पर शिशुओं के निकलने के समय होना चाहिये जिससे पेड़ को कोई हानि न पहुंचे। यदि लाख की फसल पकने से पहले ही इकट्ठी कर ली जाती है, तो इसको 'एरी लाख' कहते हैं। यह अहितकर है। यह केवल तभी करना चाहिये जब टहनी के कीड़े किसी कारणवश प्रौढ़ होने से पहले ही मर गये हों। ठीक विधि तो यह कि जब सब कीड़े मर जायें तब लाख इकट्ठी करनी चाहिये। इस लाख को स्टिक लाख कहते हैं। इस लाख को टहनियों से छुड़ा लेते हैं और साफ करने पर इससे दाना लाख तथा चूर्ण लाख प्राप्त होती है। दाना लाख तथा चूर्ण लाख को गरम करके पपड़ी के रूप में जमा लेते हैं। इसे चपड़ा कहते हैं।

पंखधारी प्रौढ़ नर

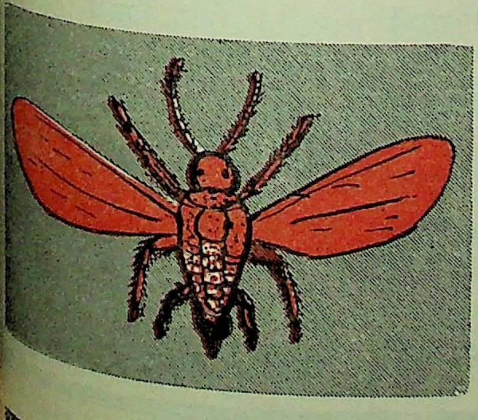

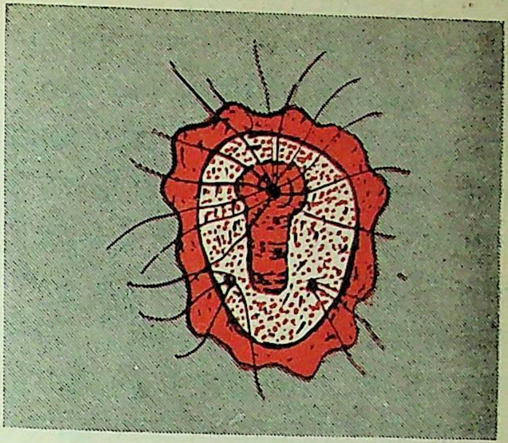

प्रौढ़ मादा

लाख के कीड़े के शत्रु

अन्य कीड़ों की भांति इस कीड़े के भी प्राकृतिक शत्रु हैं, जिन्हें दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—(अ) परजीवी तथा शिकारी कीट, (ब) अन्य शत्रु।

ये कीड़े फसल को बहुत हानि पहुंचाते हैं और कभी-कभी यह हानि उत्पादन के ३०-४० प्रतिशत तक पहुंच जाती है। परजीवी कीटों में कैल्सिड्स का नाम उल्लेखनीय है। ये परजीवी पंखधारी होते हैं, तथा लाख के कोष्ठकों के अन्दर अंडे देते हैं जिनके शिशु लाख के कीड़ों का भोजन के रूप में प्रयोग करते हैं। शिकारी कीटों में प्रमुख रूप से दो पतंगे आते हैं—यूब्लेमा तथा होलोसेरा। इन दोनों की सूड़ियां लक्ष कीट तथा लाख दोनों को खाती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाख का उत्पादन तथा सफाई

मुख्य रूप से कच्ची लाख के तीन भाग होते हैं–(क) उद्यास (रेजिन), (ख) पानी में घुलनशील रंजक और (ग) कठोर मोम। इसके अतिरिक्त मरे हुए कीड़ों के शरीर, बालू, धूल इत्यादि के कण रहते हैं। कच्ची लाख को पानी में भिगोकर, पैरों से अच्छी तरह मलकर तीन-चार बार धोते हैं, इससे लाल रंग का पदार्थ बाहर निकल जाता है जिसका अब कोई व्यापारिक महत्त्व नहीं है। कुछ समय पूर्व यह रंगने के कार्यों में प्रयोग किया जाता था। लाख को धूप में सुखा लेते हैं। इसे व्यापारिक दाना लाख कहते हैं। इस दाना लाख को गरम छानने की विधि से अथवा घोलक विधि से साफ करके चपड़ा बनाते हैं। गरम छानने की विधि में लाख को पतले कपड़ों के १० फुट या १२ फुट लम्बे झोलों में रखकर आगसे गरम करते हैं। झोले के दोनों किनारों को मोड़ते रहते हैं और लाख पिघलकर कपड़ेसे छन-कर बाहर निकल आती है जो पहली परतों के रूप में जम जाती है। इस लाख को कड़ा होने से पहले ही छोटे-छोटे टुकड़ों के रूप में परि-वर्तित कर लेते हैं। घोलक विधि में दाना लाख को किसी उपयुक्त घोलक, व्यापारिक अल्कोहल में घोलकर बारीक कपड़े से छान लेते हैं और स्वच्छ घोल को निथारकर अल्को-हल अलग कर लेते हैं और शुद्ध लाख अलग।

एक पौंड लाख के उत्पादन के लिए लगभग १,५०,००० लाख के कीड़ों की आव-श्यकता होती है। ●

हाईस्कूल और हायर सेकण्डरी कक्षाओं के लिए

हमारे उपयोगी प्रकाशन

१. **जन्तु-विज्ञान**—आर. डी. विद्यार्थी — मूल्य : ३·००

२. **वनस्पति-विज्ञान**—आर. डी. विद्यार्थी — मूल्य : ३·००

३. **प्रारम्भिक भौतिकी**—दयाप्रसाद खंडेलवाल — मूल्य : ३·५०

४. **प्रेक्टिकल जन्तु-विज्ञान**—आर. डी. विद्यार्थी — मूल्य : २·००

५. **प्रेक्टिकल वनस्पति-विज्ञान**—आर. डी. विद्यार्थी — मूल्य : २·००

६. **सामान्य विज्ञान**—मेहरोत्रा, विद्यार्थी, खंडेलवाल — मूल्य : ६·२५

७. **सरल माध्यमिक जीव-विज्ञान**—आर. डी. विद्यार्थी — मूल्य : ५·००
(हायर सेकंडरी की कक्षा ९ और १० के लिए)

श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा – ३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ट्रांस-यूरेनियम तत्त्व

अशोककुमार चौबे, एम. एस-सी.

एक तत्त्व को दूसरे में परिवर्तित करने का प्रयत्न मानव चिरकाल से करता आ रहा है। विज्ञान के प्रारम्भिक काल में भी मिश्र के कीमियागर नीची धातु लोहे आदि को ऊंची धातु स्वर्ण आदि में परिवर्तित करने का प्रयत्न करते रहे हैं। तत्त्वों के रूप का परिवर्तन करके अन्य उच्च तत्त्वों का निर्माण वैज्ञानिक दृष्टि में सर्वप्रथम १९३४ में रोम में हुआ। यह नया आविष्कार न्यूट्रान कण की खोज के बाद ही सम्भव हो सका। फर्मी, सीगरे तथा उसके साथी यूरेनियम से भी अधिक भारी तत्त्वों के बनाने के प्रयत्न कर रहे थे, और वे यूरेनियम को अन्य भारी तत्त्वों में रूपान्तरित करने में सफल हो गये। उन्होंने इन तत्त्वों को ट्रांस-यूरेनियम तत्त्व की संज्ञा प्रदान की।

इन अन्वेषणकर्ताओं ने यूरेनियम तत्त्व के ऊपर धीमी गति वाली न्यूट्रान धारा की बौछार की और उन्हें इस क्रिया के फलस्वरूप बहुत से रेडियोसक्रिय तत्त्व प्राप्त हुए। इस अनुसन्धान के कुछ ही समय पश्चात् अन्य व्यक्तियों ने विभिन्न स्थानों पर प्रयोग करके बहुत-से रेडियोधर्मी तत्त्वों का निर्माण किया। रासायनिक अन्वेषणों से ज्ञात हुआ है कि विभिन्न रेडियोसक्रिय जातियां पहले से ही ज्ञात तत्त्वों के समस्थानिक हैं जो यूरेनियम तत्त्व के दो बराबर भागों में टूट जाने से प्राप्त होते हैं। ये रेडियोधर्मी तत्त्व निम्नलिखित समीकरण के अनुसार प्राप्त होते हैं—

$$U^{२३५} + {}_{०}n' \rightarrow {}_{५६}Ba^{१४०} + Kn^{९३} + ३\,{}_{०}n' + \text{ऊर्जा}$$

न्यूक्लीयर विघटन की यह क्रिया ट्रांस-यूरेनियम तत्त्वों को प्राप्त करने में एक उपफल के रूप में प्राप्त हो गयी थी। यही नहीं, प्रथम ट्रांस-यूरेनियम तत्त्व नेपच्यूनियम की खोज भी ई. एम. मैकमिलन द्वारा विघटन क्रिया का अध्ययन करते समय १९४० में एक उपफल के रूप में हुई थी। इन नये तत्त्वों की खोज करने के पश्चात् इनके रासायनिक तथा भौतिक गुणों का अध्ययन करके तत्त्वों की सारिणी में इनका स्थान निश्चित कर दिया गया। यहां संक्षेप में ट्रांस-यूरेनियम तत्त्वों का पृथक्-पृथक् अध्ययन किया जायेगा।

कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय में १९४० की वसन्त ऋतु में मैकमिलन न्यूक्लीयर क्रिया का अध्ययन कर रहा था। वह यूरेनियम की विघटन क्रिया से प्राप्त दो तलों की ऊर्जा नाप रहा था। एक कागज के ऊपर उसने बहुत ही अल्प मात्रा में यूरेनियम आक्साइड लिया तथा इसके पास ही एक और पतला कागज लगाया। यह कागज विघटन क्रिया से प्राप्त तत्त्वों को रोककर उन्हें एकत्र करने के लिए लगाया गया था। इस प्रयोग में बहुत ही साधारण कागज का उपयोग किया गया था। स्वयं सिगरेट बनाकर सिगरेट पीने वाले व्यक्ति जिस कागज से सिगरेट बनाते हैं, उसी कागज का उपयोग इस प्रयोग में भी किया गया था। अपने अध्ययन के समय मैकमिलन ने देखा कि विघटन से प्राप्त तत्त्वों के अतिरिक्त एक रेडियोसक्रिय तत्त्व और भी जन्म लेता है लेकिन यह तत्त्व विघटित तत्त्वों की भांति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यूरेनियम से अलग नहीं होता। उसने विचार किया कि सम्भवतः अविघटनशील यूरेनियम-२३८ में न्यूट्रान के शोषण से यह नया तत्त्व प्राप्त होता है। मैकमिलन तथा उसके साथी अवेलशन ने रासायनिक क्रियाओं से इस तत्त्व का अध्ययन करने के पश्चात् बताया कि यह नया तत्त्व ९३ आवेश वाले तत्त्व का समस्थानिक ९३–नेपच्यूनियम–२३९ है जो यूरेनियम में न्यूट्रान के शोषण से प्राप्त होता है। इस क्रिया को निम्नलिखित समीकरण से प्रदर्शित किया जा सकता है—

$९२U^{२३८} + {}_{०}n^{१} \rightarrow ९२U^{२३९} +$ **गामाकिरणें** (γ)

B (**बीटा किरणें**)

$९२U^{२३९} \rightarrow ९३NP^{२३९}$ ($T_{\frac{१}{२}} = २.३५$. **दिन**)

$T_{\frac{१}{२}}$ (**अर्धजीवन काल**)

$= २३.५$ **मिनट**

यूरेनियम–२३८ एक न्यूट्रान का शोषण करने के पश्चात् रेडियोसक्रिय यूरेनियम–२३९ में परिवर्तित हो जाता है तथा γ (गामा) किरणें प्राप्त होती हैं। इस यूरेनियम–२३९ का अर्धजीवन काल ($T_{\frac{१}{२}}$) २३.५ मिनट होता है तथा यह बीटा किरणें (B) निकालकर एक नये तत्त्व पेपच्यूनियम-२३९ में परिवर्तित हो जाता है। इसका अर्धजीवन काल २३५ दिन होता है। इस न्यूक्लीयर क्रिया को संक्षेप में इस प्रकार लिखा जा सकता है—$U^{३२८}(n, \gamma)$ U २३९।

इस प्रकार प्राप्त नेपच्यूनियम बहुत ही अल्प मात्रा में था तथा इसे तुला द्वारा तौलकर इसकी मात्रा आदि ज्ञात नहीं की जा थी। इसके रासायनिक गुणों का अध्ययन करके यह सिद्ध किया गया कि यह गुणों में यूरेनियम से मिलता है और इसे यूरेनियम के आगे स्थान दिया गया।

नेपच्यूनियम का एक अन्य समस्थानिक अधिक मात्रा में १९४४ में एक और न्यूक्लीयर क्रिया द्वारा प्राप्त किया गया। दो अन्य वैज्ञानिक द्वितीय महायुद्ध में शिकागो विश्वविद्यालय की प्रयोगशाला में कार्य कर रहे थे। नेपच्यूनियम की खोज उन्होंने निम्नलिखित क्रिया द्वारा की—

$९२U^{२३८} + {}_{०}n^{१} \rightarrow ९२U^{२३७} + २{}_{०}n^{१}$

β^{-}

$९२U^{२३७} \rightarrow ९३Np^{२३७}$

$T_{\frac{१}{२}} = ६.८$ **दिन**

($T_{\frac{१}{२}} = २.२ \times १०^{६}$ **वर्ष**)

इस क्रिया को संक्षेप में इस प्रकार लिखा जा सकता है—$U^{२३८}(n,2n)^{२३७}$। इस नये तत्त्व को नेपच्यूनियम नाम की संज्ञा नेपच्यून तारे के नाप पर दी गयी। क्योंकि नेपच्यून यूरेनस तारे के बाद आता है तथा यूरेनस के नाम पर यूरेनियम रखा गया, अतः यूरेनियम के अगले तत्त्व का नाम नेपच्यूनियम रखा गया।

प्लूटोनियम

यह द्वितीय ट्रांस-यूरेनियम तत्त्व है जिसकी खोज की गयी थी। यूरेनियम तत्त्व पर ड्यूट्रान कण की क्रिया को निम्नलिखित समीकरण द्वारा दिखाया जा सकता है—

$९२U^{२३८} + १H^{२} \rightarrow ९३Np^{२३८} + २{}_{०}n^{१}$

β^{-}

$९३Np^{२३८} \rightarrow ९४Pu^{२३८}$ ($T_{\frac{१}{२}} = ८६.४$वर्ष)

$T_{\frac{१}{२}} = २.१$ दिन

इस क्रिया को संक्षेप में इस प्रकार लिखा जा सकताहै—$U^{२३८}(d, 2n)Np^{२३८}$। इन दो नवीन तत्त्वों नेपच्यूनियम और प्लूटोनियम के गुणों का अध्ययन ट्रेसर विधि द्वारा किया गया। बहुत समय तक इन तत्त्वों का नाम तत्त्व-९३ तथा तत्त्व-९४ ही चलता रहा। १९४२ में इस नवीन तत्त्व-९४ का नाम प्लूटो तारे के नाम पर प्लूटोनियम रखा गया। जिस प्रकार प्लूटो तारा स्थान के बाद द्वितीय संख्या पर आता है, उसी प्रकार इस तत्त्व को भी यूरेनियम के बाद रखा गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

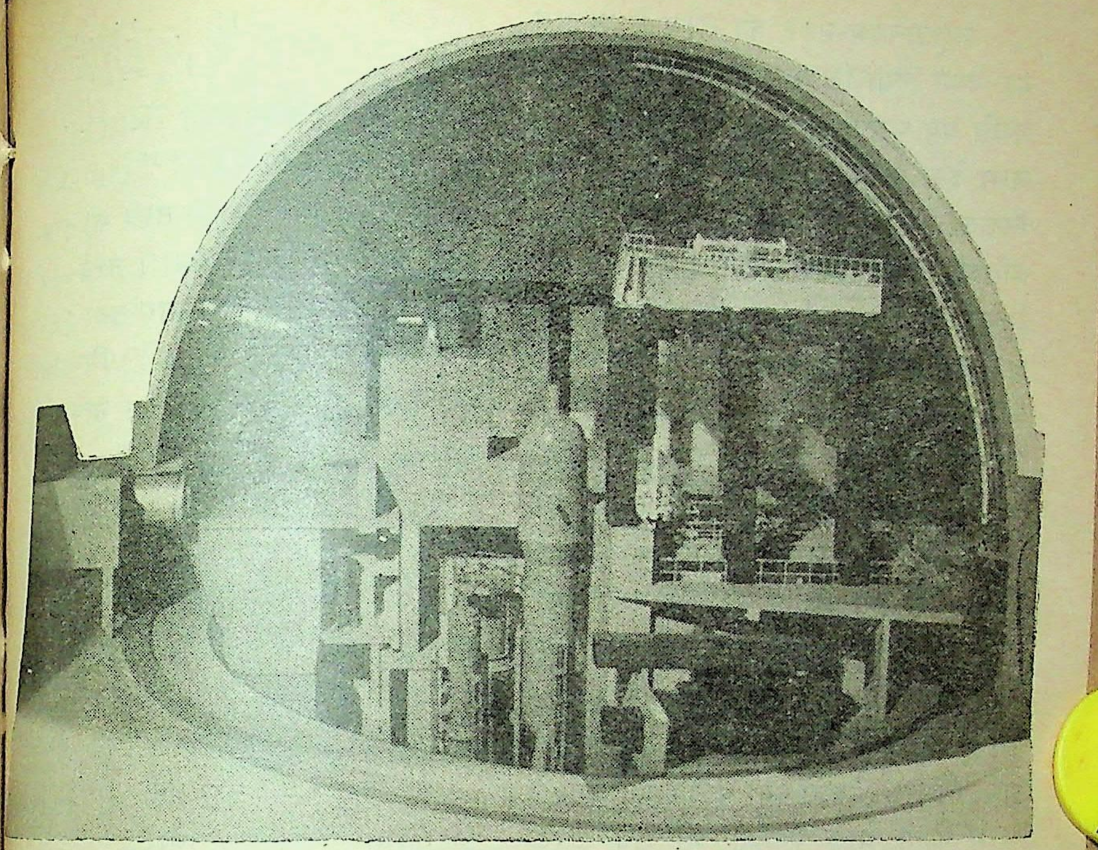

पश्चिम जरमनी के ओवरीगियेन में निर्मित एक महत्त्वपूर्ण अणुशक्ति प्लांट की झांकी

यूरेनियम-२२५ न्यूक्लीयर क्रियाओं द्वारा जिस प्रकार अपार ऊर्जा को जन्म देता है, उसी प्रकार यह कल्पना की गयी थी कि यह नया तत्त्व प्लूटोनियम भी प्रचुर मात्रा में न्यूक्लीयर ऊर्जा प्रदान करेगा । प्लूटोनियम के एक समस्थानिक प्लूटोनियम-२३९ की खोज १९४१ की वसन्त ऋतु में सीगरे, केनेडी, वहल तथा सीबर्ग नामक वैज्ञानिकों ने की । यूरेनियम-२३८ पर मन्द गति वाले न्यूट्रान की क्रिया से नेपच्यूनियम-२३९ को प्राप्त किया गया । इसका अर्धजीवन काल २.३५ दिन होता है । नेपच्यूनियम-२३९ बीटा किरणें निकालने के बाद ९५-प्लूटोनियम-२३९ में परिवर्तित हो जाता है । इसका अर्धजीवन-काल २४,३६० वर्ष है ।

प्लूटोनियम के इस समस्थानिक को प्राप्त करने के लिए १.२ किलोग्राम यूरेनाइल नाइट्रेट लिया गया था । इसे पैराफिन की मोम में अच्छी तरह मिला दिया गया था । इस पैराफिन का उपयोग उच्चगति वाले न्यूट्रान की गति कम करने के लिए किया गया था । सायक्लोट्रान नामक मशीन में बैरीलियम धातु का लक्ष्य लगाकर न्यूट्रान प्राप्त किये गये थे । बैरीलियम लक्ष्य के बिलकुल पीछे यूरेनाइल नाइट्रेट तथा पैराफिन को रख दिया गया था । रासायनिक विधियों द्वारा प्राप्त नैपच्यूनियम-२३९ को पृथक् किया गया था । इसकी मात्रा ०.५ माइक्रोग्राम थी । यह नेपच्यूनियम बीटा किरणें निकाल प्लूटोनियम में परिवर्तित होता रहा । प्लूटोनियम-२३९ से निकलने वाले अल्फा कणों को मापकर इस नये समस्थानिक की पुष्टि की गयी और इसका अर्धजीवन काल ज्ञात किया गया ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्लूटोनियम-२३९ की खोज के पश्चात् यह देखा गया कि क्या यूरेनियम-२३५ की भांति यह प्लूटोनियम भी विघटन क्रिया को जन्म देता है ? इन प्रयोगों का निष्कर्ष यह निकला कि यह समस्थानिक्र यूरेनियम में ५० प्रतिशत अधिक विघटनशील है तथा विघटन क्रिया द्वारा अपार ऊर्जा को जन्म देता है। जब यह अच्छी तरह ज्ञात हो गया कि प्लूटोनियम से प्राप्त विघटन क्रिया यूरेनियम से अधिक महत्त्वपूर्ण है, तब प्लूटोनियम को अधिक मात्रा में प्राप्त करने के प्रयत्न किये जाने लगे। द्वितीय महायुद्ध के समय प्लूटोनियम की इस योजना को गुप्त रखा गया, तथा इस योजना को एक गुप्त नाम भी दिया गया था। ९५-प्लूटोनियम-२३९ को अधिक मात्रा में प्राप्त करने की इस योजना का गुप्त नाम '४९' रखा गया था। इस योजना में काम करने वाले व्यक्ति भी अब अपने-आप को '४९' नाम से सम्बोधित करते हैं। अगस्त १९४२ में कन्निघम तथा बरनर नामक व्यक्तियों ने शिकागो विश्वविद्यालय में कार्य करके प्रथम बार एक माइक्रोग्राम प्लूटोनियम-२३९ को प्राप्त किया था। यह प्रथम ट्रांस-यूरेनियम तत्त्व था जिसे अति सूक्ष्मदर्शियों का प्रयोग करके आंखों द्वारा देखा जा सका था।

अमेरिसियम तथा क्यूरियम

शिकागो विश्वविद्यालय की युद्धकाल की प्रयोगशाला में प्लूटोनियम का पूर्ण रूप से अध्ययन करने के पश्चात् वैज्ञानिकों ने अगले ट्रांस-यूरेनियम तत्त्व के विषय में विचार करना प्रारम्भ किया। एक और नये तत्त्व की खोज १९४४ की ग्रीष्म ऋतु में की गयी। इस तत्त्व को प्लूटोनियम-२३९ पर ३२ Mev ऊर्जा के अल्फा कणों की क्रिया से प्राप्त किया गया था। इस क्रिया को निम्नलिखित समीकरण द्वारा दर्शाया जा सकता है—

$$९४Pu^{२३९} + २He^{४} - ९६Cm^{२४२} \downarrow (T\tfrac{१}{२} = १६२.५ \text{ दिन})$$

$$(\text{अल्फाकण}) \qquad + On^{१}$$

इस क्रिया को संक्षेप में $Pu^{२३९}(\alpha,n)\,Cm^{२४२}$ लिखा जा सकता है। इस तत्त्व को तत्त्व-९६ तथा क्यूरियम कहा गया। तत्त्व-९५ की खोज १९४४ के अन्तिम मास तथा १९४५ के प्रारम्भिक महीनों में की गयी। निम्नलिखित समीकरण द्वारा तत्त्व-९५ को उत्पन्न किया गया—

$$९४Pu^{२३९} + {}_{०}n^{१} \longrightarrow ९४Pu^{२४०} \quad (T\tfrac{१}{२} = ६५८० \text{ वर्ष})$$

$$+\gamma (\text{गामाकिरणें})$$

$$९४Pu^{२४०} + {}_{०}n^{१} \longrightarrow ९४Pu^{२४१} + \gamma$$

$$\beta$$

$$९४Pu^{२४१} \rightarrow ९५Am^{२४१} (T\tfrac{१}{२} = ४५८ \text{ वर्ष})$$

$$T\tfrac{१}{२} = १३.२ \text{ वर्ष}$$

इन नवीन तत्त्वों—९५ तथा ९६—को रासायनिक विधियों से पृथक करने में बहुत ही कठिनाइयां आयीं तथा इस कारण बहुत समय तक इनका नामकरण नहीं हो सका। बहुत समय पश्चात बर्कले में आयन परिवर्तन विधि का प्रयोग करके इन तत्त्वों को पृथक किया गया।

बैरकीलियम तथा कैलिफोर्नियम

अगले ट्रांस-यूरेनियम तत्त्वों को प्राप्त करने के लिए अमेरिसियम तथा क्यूरियम को अधिक मात्रा में प्राप्त करना आवश्यक था, क्योंकि अगले तत्त्वों को क्यूरियम आदि को लक्ष्य बनाकर प्राप्त किया जा सकता था। इन तत्त्वों के बहुत अधिक रेडियोसक्रिय होने के कारण अगले तत्त्वों को प्राप्त करना एक बहुत ही कठिन कार्य था। यह कठिन समस्या भी हल हो गयी और १९४९ के अन्तिम और १९५० के प्रारम्भिक मास में प्रयोग सफल हो गये। प्लूटोनियम के ऊपर अधिक समय तक तीव्र न्यूट्रान धारा की बौछार करके अमेरिसियम को प्राप्त किया गया। अमेरिसियम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

76258

इतिहास के विद्यार्थियों तथा इतिहास में रुचि रखने वाले प्रत्येक पाठक के लिए एक संग्रहणीय प्रकाशन

हुमायूं

विद्वान इतिहासज्ञ डा. हरिशंकर श्रीवास्तव ने हुमायूं के जीवन पर उपलब्ध सभी फारसी तथा अन्य भाषाओं के ग्रन्थों का अध्ययनकर मुगलकालीन इतिहास के एक चर्चनीय परिच्छेद को प्रस्तुत किया है। महत्त्वपूर्ण युद्धों के मानचित्र, भौगोलिक स्थान, व्यक्तियों के नाम तथा फारसी शब्दों के प्रचलित उच्चारण पुस्तक को और भी उपयोगी बनाते हैं।

कुछ सम्मतियां

It is exceedingly well written in elegant Hindi. You have made use of the original as well as secondary sources of information and produced a scholarly and at the same time an eminently readable work.

—*M.P. Sharma, M.A., D. Litt., Vice Chancellor, University of Saugar.*

डा. हरिशंकर श्रीवास्तव की 'हुमायूं' प्रामाणिक आधार पर लिखी हुई एक पठनीय पुस्तक है। पुस्तक की भाषा सुबोध और सुरुचिपूर्ण है।···इतिहास में रुचि लेने वाले पाठकों और स्नातकोत्तर कक्षा के विद्यार्थियों के लिए यह पुस्तक उपयोगी सिद्ध होगी।

—हीरालाल सिंह, एम.ए., पी.एच-डी. (लन्दन), प्रोफेसर तथा अध्यक्ष, इतिहास विभाग, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, बनारस।

लगभग ५०० पृष्ठ : डिमाई अठपेजी आकार :
बहुरंगी सुनहरा आवरण : मूल्य १५ रुपये

श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा–३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धातु मिलीग्राम में प्राप्त की गयी और इसे लक्ष्य धातु के रूप में प्रयुक्त किया गया। इस लक्ष्य पर न्यूट्रान की तीव्र धारा द्वारा क्यूरियम को माइक्रोग्राम में प्राप्त किया गया और फिर इसे लक्ष्य बनाया गया।

सीबर्ग, टामसन तथा उसके साथियों ने दिसम्बर १९४९ में तत्त्व-९७ की खोज की। मिलीग्राम में प्राप्त अमेरिसियम-२४१ पर ३५ Mev. ऊर्जा वाले अल्फा कणों की क्रिया से तत्त्व-९७ जिसकी मात्रा संख्या २४३ थी, प्राप्त किया गया। इस क्रिया को निम्नलिखित समीकरण द्वारा दिखाया जा सकता है—

$$\text{९५}Am^{\text{२४१}} + \text{२}He^{\text{४}} \longrightarrow \text{९७}Br^{\text{२४३}}$$

$$(T_{\frac{\text{१}}{\text{२}}} = \text{४.५ घण्टा})$$

$$(\text{अल्फाकण}) \qquad + \text{२}_{\text{०}}n^{\text{१}}$$

तत्त्व-९७ प्राप्त करने वाले वैज्ञानिकों ने ही फरवरी ५० में तत्त्व-९८ प्राप्त किया। तत्त्व ९८ के प्रथम समस्थानिक की मात्रा संख्या २४५ है तथा इससे अल्फा कण निकलते हैं। ३५Mev ऊर्जा वाले अल्फा कणों की बौछार माइक्रोग्राम में प्राप्त क्यूरियम-२४२ पर की गयी। इसे निम्नलिखित समीकरण द्वारा दिखा सकते हैं--

$$\text{९६}Cm^{\text{२४२}} + \text{२}He^{\text{४}} \longrightarrow \text{९८}Cf^{\text{२४५}}$$

$$(T_{\frac{\text{१}}{\text{२}}} = \text{४४ मिनट})$$

$$+ {}_{\text{०}}n^{\text{१}}$$

तत्त्व-९८ बहुत ही कम मात्रा में प्राप्त हुआ था। इस तत्त्व के लगभग ५,००० परमाणु ही प्राप्त हुए थे तथा इतने परमाणुओं द्वारा ही इसके गुणों का परीक्षण कर लिया गया था। इतने कम परमाणुओं के रूप में प्राप्त तत्त्व को देखकर किसी ने उस समय कहा था कि यह परमाणुओं की संख्या तो उन छात्रों से भी कम है जो उस समय कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय में अध्ययन कर रहे थे। तत्त्व-९८ के नाम क्रमशः बर्कले शहर और कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय के नाम पर बर्केलियम तथा कैलीफोर्नियम रखे गये।

तत्त्व-९९ तथा १०० की खोज विज्ञान में एक अनूठा उदाहरण है। ये सातवें तथा आठवे ट्रांस-यूरेनियम तत्त्व न्यूक्लीयर विस्फोट से प्राप्त रेडियो धूल से प्राप्त किये गये थे। नवम्बर १, १९५२ को प्रशान्त महासागर में एक बड़े न्यूक्लीयर विस्फोट का परीक्षण किया गया। वायुयानों में छनना कागज लगाकर इस विस्फोट की रेडियो धूल को एकत्र किया गया। तत्पश्चात् विस्फोट का यह मलबा अमरीका में, विभिन्न प्रयोगशालाओं में परीक्षण के हेतु लाया गया। इसका परीक्षण करने पर इसमें प्लूटोनियम के कई समस्थानिक प्राप्त हुए। प्लूटोनियम-२४३ को तो बहुत पहले ही प्राप्त किया जा चुका था लेकिन प्लूटोनियम-२४४ तथा २४६ को इस धूल में से प्राप्त किया गया। कैलीफोर्निया विकिरण प्रयोगशाला में कार्य करने वाले व्यक्तिओं ने इस विस्फोट के मलबे से तत्त्व-९९ तथा १०० को प्राप्त करने का प्रयत्न किया। कठिन परिश्रम के बाद ये लोग तत्त्व ९९ तथा १०० को प्राप्त करने में सफल हो गये। तत्त्व-९९ का अर्धजीवन काल २० दिन है तथा इसमें से ६.६ Mev के अल्फा कण निकलते हैं। इस तत्त्व की मात्रा संख्या २५३ पायी गयी। तत्त्व-१०० का अर्धजीवन काल २२ घंटा है तथा इसमें से ७.१ Mev के अल्फा कण निकलते हैं। इसकी मात्रा संख्या २५५ पायी गयी। तत्त्व १०० के केवल २०० परमाणु ही प्राप्त किये जा सके तथा इन्हीं से इसे पहचाना गया। तत्त्व-९९ का नाम महान वैज्ञानिक आइंसाटाइन के सम्मान में आइंसटाइनियम रखा गया और तत्त्व-१०० का नाम परमाणु युग के जन्मदाता, वैज्ञानिक फर्मी के नाम पर फरमियम रखा गया।

इन तत्त्वों की उपस्थिति ज्ञात होने के पश्चात् इन्हें अधिक मात्रा में प्राप्त किये जाने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

के प्रयत्न किये गये। प्लूटोनियम–२३९ पर तीव्र न्यूट्रान की धारा की क्रिया से इतना आइंसटाइनियम-२५३ प्राप्त किया जा सका जिसे तुला की सहायता से तौला जा सका। फरमियम को इतनी मात्रा में प्राप्त नहीं किया जा सका, जिसे तौलना सम्भव हो।

इस तत्त्व की खोज अत्यन्त नाटकीय ढंग से हुई। अब तक सभी ट्रांस-यूरेनियम तत्त्व उन लक्ष्य धातुओं से प्राप्त किये गये थे जिन्हें तौलना सम्भव था। लेकिन इस नये तत्त्व की खोज ऐसे लक्ष्य तत्त्व से की गयी थी जिसे तौलना सम्भव ही नहीं था। इस तत्त्व की खोज के समय तक तकनीकी ज्ञान इतना अच्छा हो गया था कि तत्त्व–१०१ कितनी ही अल्पमात्रा में क्यों न प्राप्त हो उसका परीक्षण किया जा सकता था। आइंसटाइनियम-२५३ पर ४० Mev ऊर्जा वाले अल्फा कणों की बौछार से तत्त्व-१०१ की खोज की गयी। इस तत्त्व की प्राप्त मात्रा का अनुमान इस प्रकार लगाया जा सकता है कि २१० न्यूक्लीयस आइंसटाइनियम का लिया गया तो उससे १ न्यूक्लीयस तत्त्व–१०१ का प्राप्त हुआ। तत्त्व १०१ का अर्धजीवन काल १.५ घंटा है, तथा यह तत्त्व–१०० अर्थात् फरमियम–२५६ में परिवर्तित हो जाता है। फरमियम का अर्ध-जीवन काल १६० मिनट है तथा यह बहुत तेजी से न्यूक्लीयर विघटन क्रिया द्वारा नष्ट हो जाता है। तत्त्व-१०१ का जीवन काल कम होने के कारण इसे पहचानने में अधिक समय लगा। इन क्रियाओं को निम्नलिखित प्रकार से दिखाया जा सकता है—

$${}_{९९}\text{Es}^{२५३} + {}_{२}\text{He}^{४} \rightarrow {}_{१०१}\text{Md}^{२५३} + {}_{०}\text{n}^{१}$$

$${}_{१०१}\text{Md}^{२५६} \longrightarrow {}_{१००}\text{Fm}^{२५६}$$

$$T_{\frac{१}{२}} = १.५ \text{ घंटा}$$

$${}_{१००}\text{Fm}^{२५६} \longrightarrow \text{न्यूक्लीयर विघटन क्रिया}$$

$$T_{\frac{१}{२}} = १६० \text{ मिनट}$$

अमरीका की आर्गन नेशनल प्रयोगशाला, इंग्लैंड के एटामिक एनर्जी कमीशन तथा स्वीडन के नोबल इंस्टीट्यूट के वैज्ञानिकों ने १०५७ में मिलकर स्टाकहोम की नोबल प्रयोगशाला में परीक्षण करके तत्त्व-१०२ के होने की घोषणा की। क्यूरियम-२४४ पर कार्बन-१३ के आयनों की बौछार करके इस नये तत्त्व को प्राप्त किया गया। इन वैज्ञानिकों ने बताया कि तत्त्व-१०२ से ८५ Mev के अल्फा कण निकलते हैं तथा इसका अर्धजीवन काल १० मिनट है। इन वैज्ञानिकों ने नोबल पुरस्कार को जन्म देने वाले वैज्ञानिक के नाम पर इस तत्त्व का नाम भी नोबिलियम रखा। रूस की विभिन्न प्रयोगशालाओं में कार्य करने वाले तथा बर्कले में कार्य करने वाले वैज्ञानिक इस तत्त्व की पुष्टि नहीं कर सके। बर्कले में कार्य करने वाले वैज्ञानिकों के प्रयोग अधिक विश्वसनीय थे। जब इन प्रयोगों से तत्त्व १०२ की पुष्टि नहीं की जा सकी तब वैज्ञानिकों ने इस तत्त्व को नहीं माना।

१९५२ में कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय में कार्य करने वाले वैज्ञानिकों ने क्यूरियम-१४६ पर कार्बन-१२ के आयनों की बौछार करके तत्त्व-१०२ प्राप्त होने की घोषणा की। उन्होंने बताया कि इस तत्त्व की मात्रा संख्या २५४ है। इस क्रिया को निम्नलिखित भांति दिखाया जा सकता है—

$${}_{९६}\text{Cm}^{२४६} + {}_{६}\text{C}^{१२} \rightarrow १०२^{२४५} + ४{}_{०}n^{१}$$

$$१०२^{२५४} \longrightarrow १००\text{Fm}^{२५०} + {}_{२}\text{He}^{४}$$

$$(T_{\frac{१}{२}} = ३ \text{ सेकंड})$$

तत्त्व-१०२ फरमियम-२५० में परिवर्तित हो जाता है। यह फरमियम ७.४३ Mev के अल्फा कण निकलता है तथा इसका अर्ध जीवन काल ३० मिनट है। इन अल्फा कणों द्वारा ही तत्त्व-१०२ की पुष्टि की गयी है। यद्यपि इस तत्त्व को नोबिलियम नाम दिया गया था, लेकिन इसे माना नहीं गया तथा अब इसे कोई नाम नहीं दिया गया है। जब तक

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस तत्त्व की पुष्टि अन्य परीक्षणों से नहीं हो जाती, उस समय तक इसे कोई नाम नहीं दिया जायेगा।

लारेंसियम

तत्त्व-१०२ की खोज के लगभग ३ वर्ष बाद १९६१ की वसन्त ऋतु में बर्कले में कुछ वैज्ञानिकों के समूह ने तत्त्व-१०३ को प्राप्त किया तथा इसके होने की पुष्टि की। इस तत्त्व का नाम सायक्लोट्रान मशीन बनाने वाले महान वैज्ञानिक ओ. लारेंस के सम्मान में लारेंसियम रखा गया। कैलीफोर्नियम तत्त्व के समस्थानिकों पर बोरान-१० तथा बोरान-११ की क्रिया से इस तत्त्व को प्राप्त किया गया। लक्ष्य धातु कैलीफोर्नियम-२५२ को निम्नलिखित समीकरण से दिखाया जा सकता है—

$$_{98}Cf^{252} + {}_{5}B^{11} \rightarrow {}_{103}Lw^{257} \; (T_{\frac{1}{2}} = 8 \text{ सेकंड}) + 6\,{}_{0}n^{1}$$

$$_{98}Cf^{252} + {}_{5}B^{10} \rightarrow {}_{103}Lw^{257} \; (T_{\frac{1}{2}} = 8 \text{ सेकंड}) + 5\,{}_{0}n^{1}$$

लारेंसियम की मात्रा संख्या-२५७ पायी गयी तथा यह ८.६ Mev के अल्फा कण निकालता है। इसका अर्धजीवन काल ८ सेकंड है। अर्ध जीवन काल कम होने के कारण इस तत्त्व के रासायनिक परीक्षण नहीं सके है केवल न्यूक्लीयर क्रियाओं द्वारा ही इसकी पुष्टि की जा सकी है।

ट्रांसयूरेनियम तत्त्वों की खोज का इतिहास पढ़ने में वास्तव में बहुत ही आनन्ददायक है। वैज्ञानिकों ने लगन तथा परिश्रम से इन तत्त्वों की खोज की, तथा बहुत ही कठिनाइयों का सामना करते हुए इन तत्त्वों के जीवन पर प्रकाश डाला। सबसे अधिक भारी तत्त्व को तौलने योग्य मात्रा में प्राप्त नहीं किया जा सकता है, आइंसटाइनियम तक ही तत्त्वों को तौलने योग्य मात्रा में प्राप्त किया जा सका।

ग्राहकों से निवेदन

विज्ञान-लोक की एक प्रति का मूल्य ७५ पैसे है। एक वर्ष का शुल्क ९ रुपये, दो वर्ष का १६ रुपये तथा तीन वर्ष का २० रुपये (विशेष रियायत) है।

पत्र-व्यवहार करते समय अपनी ग्राहक संख्या अवश्य लिखें। विज्ञान-लोक जिस लिफाफे में आपके पास आता है, उसी पर आपकी ग्राहक संख्या आपके पते के ऊपर लिखी रहती है।

पता बदलने की सूचना हमें एक मास पूर्व प्राप्त होनी चाहिये। इसके लिए नया और पुराना, दोनों पते भेजें। यदि छह मास से कम के लिए पता बदलवाना हो, तो कृपया अपने डाकखाने से इसकी व्यवस्था कर लें।

नये ग्राहकों को मनी-आर्डर कूपन पर अपना नाम, पूरा पता तथा किस अंक से विज्ञान-लोक भेजा जाय, यह अवश्य लिखना चाहिये।

पुराने ग्राहक अपनी सदस्यता का नवीयन (renewal) कराते समय मनी-आर्डर कूपन पर अपना नाम, पूरा पता तथा ग्राहक संख्या लिखने की कृपा करें।

विक्रय-व्यवस्थापक * विज्ञान-लोक * हास्पिटल रोड, आगरा-३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

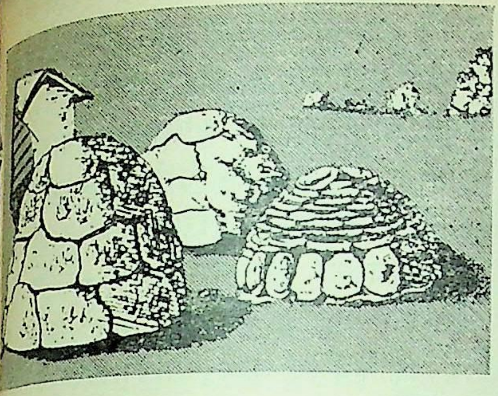

गोबर की खाद

सत्यकुमार, एम.एस-सी.

गोबर की खाद से अर्थ है फार्म पर रहने वाले पशुओं का मलमूत्र, उनके नीचे की बिछैली या बिछावन, उनके खाने से बचा हुआ चारा इत्यादि।

इस खाद का प्रयोग युग-युगों से चला आ रहा है। किसान के लिए सबसे निकट और सहज उपलब्ध यही खाद है। वैसे भी इस खाद में पौधों के लिए आवश्यक सभी पोषक तत्त्व पाये जाते हैं। पौधों को पोषक तत्त्व देने के अतिरिक्त यह खाद भूमि की भौतिक दशा भी सुधारती है। नाइट्रोजन व पोटैशियम की मात्रा बढ़ाती है। भूमि-ताप पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। भूमि-कटाव कम होता है। भूमि में धारण तथा जल धारण क्षमता बढ़ती है, वायु संचार उचित होता है। इसकी उपस्थिति में रासायनिक उर्वरक सोने में सुहागे का काम करते हैं।

हमारे देश में किसान प्रायः गोबर का प्रयोग करता है। हमारे फार्मों पर गाय, भैंस के अतिरिक्त अन्य पशु नहीं होते, जबकि विदेशों में घोड़ा, बकरी, भेड़, मुरगी, बतख इत्यादि भी फार्म पर रहते हैं। हमारे यहां मूत्र को इकट्ठा नहीं किया जाता। गोबर में जितना सोख लिया जाता है, वही खाद में पहुंच पाता है। पशुओं के नीचे बिछावन की प्रथा भी हमारे यहां नहीं है। बिछावन से पशु को आराम मिलता है तथा वह द्रव मल भी सोख लेता है। वैसे भी मल व मूत्र अलग-अलग स्थानों पर एकत्र किये जाने चाहिये। एक साथ इकट्ठा किये जाने पर अनेक पोषक तत्त्व नष्ट हो जाते हैं। हमारे यहां फार्मों पर कुकुर पालन का रिवाज नगण्य ही है। प्रयोगों से पता चला है कि बीट की खाद में गोबर की खाद से दुगुना अमोनिया तथा तिगुना फासफोरस पेंटा आक्साइड होता है। पोटैशियम की मात्रा भी इसमें कुछ अधिक ही होती है। भेड़-बकरियों के मलमूत्र की खाद में भी गोबर से अधिक पोषक तत्त्व होते हैं।

ताजा गोबर अनेक पदार्थों का जटिल मिश्रण होता है। इसकी रचना स्थिर नहीं अपितु परिवर्तनशील होती है। प्रायः इसमें निम्नलिखित पदार्थ होते हैं—

(१) जल ७०-८०%, (२) ठोस पदार्थ २०-३०%, (३) नाइट्रोजन ६-७%, (४) पोटाशियम ३-४%, (५) फासफोरस १५-१८%।

ठोस पदार्थ में बिना पचे और अघुलनशील खाद्य पदार्थ होते हैं। कुछ मात्रा में पाचक रसों से प्राप्त पदार्थ भी होते हैं। इनके अतिरिक्त वसा, स्टार्च, काष्ठीय तन्तु, बिना पचा सैलुलोज, म्युकोसा इत्यादि भी होते हैं।

मूत्र और बिछावन की भी गोबर की खाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में ही गिनती होती है। मूत्र में १७% जल, ४% ठोस व २% यूरिया होता है। इनके अतिरिक्त अल्प मात्रा में सोडियम यूरेट, सोडियम हिपूरेट, सोडियम क्लोराइड, सोडियम सल्फेट व बाईसल्फेट, पोटैशियम सल्फेट, कैल्शियम फासफेट व मैग्नीशियम फासफेट होते हैं।

बिछावन में विभिन्न अनाजों का भूसा, घास, पत्तियां, लकड़ी का बुरादा, मक्का की पूली आदि पशु बांधने के स्थान पर उसके आराम के लिए बिछाया जाता है। यह मूत्र तथा अन्य बाष्पशील पदार्थ का शोषण कर लेता है। पौधे के लिए सभी आवश्यक तत्त्व इसमें होते हैं तथा यह खाद को हलका (पतला) करने के काम भी आता है। यह पौधों को नाइट्रोजन तथा कार्बन देता है। यह किण्वन द्वारा होने वाले परिवर्तनों पर प्रभाव डालता है, सरन्ध्रता बढ़ाता है तथा जीवाणुओं की वृद्धि करता है।

भूसे में नाइट्रोजन, फासफोरस व पोटाशियम, तीनों पोषक तत्त्व होते हैं। सूखे पत्तों का यही उपयोग होता है। लकड़ी के बुरादे की शोषण-शक्ति बहुत होती है। इससे आक्सीकरण और किण्वण में सहायता मिलती है। पहाड़ी इलाकों में शुष्क 'ब्रेकेन' बिछावन के तौर पर इस्तेमाल करते हैं। चमड़ा कमाने के बाद अवशिष्ट कचरे का भी कोई अन्य उपयोग न होने के कारण बिछावन में ही इस्तेमाल होता है।

गोबर की खाद के गुण निम्नलिखित तथ्यों पर निर्भर करते हैं—

१. पशु की किस्म, २. पशु का भोजन, ३. पशु की आयु, ४. पशु का बिछावन, ५. संग्रहण की परिस्थितियां।

विभिन्न पशुओं के मल-मूत्र में पोषक तत्त्वों की मात्रा भिन्न-भिन्न होती है। मलमूत्र की रचना पशुओं के भोजन पर निर्भर करती है। भोजन में मात्रा और किस्म मुख्य हैं। केवल भूसा-घास खाने वाले पशु के मल से बनायी गयी खाद में चोकर, बिनौला या खल खाने वाले पशु की अपेक्षा कम नाइट्रोजन होगी। पशु की पाचनशक्ति के अनुसार भी खाद की रचना में परिवर्तन हो जाता है। आयु का भी पाचनशक्ति से सम्बन्ध है। वैसे भी बाल व युवा पशु अपने शरीर के विकास के लिए अधिक पोषक तत्त्व लेते हैं। खाद को संगृहीत करने में यदि सावधानी न बरती गयी, तो नाइट्रोजन और पोटैशियम के घुलनशील लवणों के बह जाने की सम्भावना रहती है। अपक्षालन और किण्वन द्वारा खाद का विच्छेदन होने से पोषक अंग नष्ट हो जाते हैं। इसके लिए आवश्यक है कि— १. खाद इकट्ठा करने में बिछावन की अधिक मात्रा हो, २. पक्के फर्श पर खाद इकट्ठी करें और ३. ढेर का ढलाव ठीक रखा जाय।

गोबर की खाद में अनेक जीवाणु 'बैक्टीरिया' होते हैं, अतः उसमें किण्वन द्वारा विच्छेदन होता है। गोबर की खाद के नाइट्रोजनीय पदार्थ का विच्छेदन तीन भागों में बांटा जा सकता है—१. मूत्र का किण्वन, २. ठोस पदार्थ का गलना, ३. एमीनो यौगिकों का किण्वन।

इसी प्रकार नाइट्रोजनविहीन पदार्थ का विच्छेदन भी तीन भागों में बांटा जा सकता हैं—१. वसीय अम्लों का किण्वन, २. हाइड्रोजन सल्फाइड किण्वन, ३. कार्बोहाइड्रेटों का किण्वन।

गोबर की खाद में विच्छेदन के फलस्वरूप अनेक परिवर्तन होते रहते हैं तथा अनेक यौगिक बनते हैं। जैसे-जैसे खाद पुरानी होती जाती है, उसमें नाइट्रोजन की वृद्धि होती है। बाद में नाइट्रोजनविहीन की हानि अधिक होती है तथा बैक्टीरिया द्वारा अमोनिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुनः प्रोटीन में बदल जाता है। कार्बनिक पदार्थों के संश्लेषण से अन्त में धरण बनता है।

गोबर की खाद के विच्छेदन पर ताप, वायु, जल तथा जीवाणुओं का प्रभाव पड़ता है। ताप अनुकूलतम होना चाहिये, न कम न अधिक (जिस ताप पर जीवाणुओं की क्रियाशीलता कम होती है)। अधिक ताप पर जीवाणु नष्ट हो जाते हैं। पर्याप्त वायु पहुंचती रहे, इसके लिए खाद के ढेर को पलटते रहना चाहिये। खाद में जल की मात्रा कम होने से फफूंद लग जाती है, अधिक जल की मात्रा में वायु की मात्रा कम हो जाती है तथा उपयुक्त तापक्रम नहीं पहुंच पाता। अतः जल की मात्रा भी उपयुक्त होनी चाहिये। इसके अतिरिक्त खाद में जीवाणुओं के लिए पर्याप्त भोजन होना चाहिये।

गोबर की खाद तैयार करना

भारत की जनसंख्या विश्व की जनसंख्या का पांचवां भाग है। भारत के पशुओं की भी जनसंख्या विश्व के पशुओं की जनसंख्या का पांचवां भाग हैं। हमारा देश कृषिप्रधान कहा जाता है पर निम्नलिखित कारणों से यहां गोबर की खाद अधिक मात्रा में नहीं बनायी जाती है—

१. उपले (कंडे) के रूप में गोबर ईंधन के लिए उपयुक्त होता है।

२. खाद बनाने की वैज्ञानिक विधि का पालन नहीं होता। गरमी में अधिक तापक्रम से व वर्षा में घुल-बहकर अनेक पोषक तत्त्व नष्ट हो जाते हैं।

३. पशुओं के मूत्र को इकट्ठा नहीं किया जाता, जो कि खाद का प्रमुख अंग है।

गोबर की खाद तैयार करने के लिए १०×५×३ फुट या २५×६×४ फुट

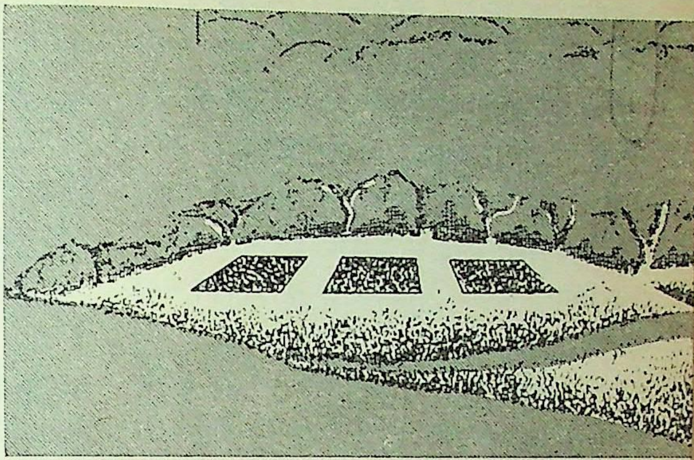

गोबर की खाद तैयार करने के लिए विशेष आकार के गड्ढे तैयार किये जाते हैं जिनमें गोबर के अतिरिक्त कूड़ा-करकट, बिछावन आदि भरते हैं

आकार के गढ्डे तैयार किये जाते हैं। पशु बांधने के स्थान के पास ही कूड़ा-करकट, बिछावन आदि एक ढेर में इकट्ठा करते हैं। इसमें ३-४ किलो मिट्टी मिलाकर पशुओं के मूत्र के शोषण के लिए उनके नीचे बिछा देते हैं। प्रतिदिन प्रातः यह बिछावन गोबर ठीक तरह मिलाकर गड्ढे के भाग में भरते हैं। जब गड्ढे का यह भाग भरते-भरते पृथ्वी तल से १½ फुट ऊंचा हो जाय, तो उसका गुम्वद-सा बनाकर मिट्टी से लेप देते हैं। एक गुम्बद बन जाने के बाद दूसरे भाग को भी इसी प्रकार भरना शुरूकर गुम्बद बना लेते है। इस प्रकार प्रत्येक गड्ढे में दो गुम्बद बन जाते हैं। इस विधि में यह लाभ होता है कि २-३ माह में जब तक दूसरा गुम्बद तैयार होता है, पहले गुम्वद की खाद सड़कर खेत में देने योग्य हो जाती है। इसे खेत में दे देने के बाद गड्ढे के इस भाग को पुनः भरना प्रारम्भ कर देते हैं। जब तक यह भरेगा, दूसरा गुम्बद खेत में देने योग्य हो जायगा। इस प्रकार वर्ष भर निरन्तर खेत के लिए एक ही गड्ढे से खाद उपलब्ध होती रहेगी।

संग्रहण

खाद को खुला नहीं छोड़ना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छेड़ना, कुरेदना उलटना-पलटना भी वर्जित है। खाद का ढेर पूर्णत: सघन रहे तथा उसमें पानी की अनुकूलतम मात्रा हो। खाद का ढेर खुले में न होकर छाये में होना चाहिये। पक्के और समतल फर्श पर खाद इकट्ठी करनी चाहिये तथा २-३ माह बाद इस्तेमाल करनी चाहिये, क्योंकि ताजा खाद की अपेक्षा सड़ी खाद उत्तम होती है।

अच्छी सड़ी खाद की पहचान यह है कि उसमें दुर्गन्ध नहीं आती तथा वह काले रंग की भुरभुरी होती है।

गोबर की खाद का भूमि पर भौतिक प्रभाव

भारी मिट्टी की दशा सुधर जाती है, भूमि वायु की मात्रा बढ़ती है, जड़ों का विकास अधिक होता है, मिट्टी का कटाव कम होता है, रेतीली मिट्टी की जल धारण क्षमता बढ़ जाती है, भूमि में धरण की मात्रा भी बढ़ जाती है। भूमि ताप अधिक शोषित करती है और पौधों की वृद्धि बहुत तेजी से होती हैं।

रासायनिक प्रभाव

पौधों को पोषक खनिज अधिक मात्रा में मिलते हैं। भूमि को कार्बनिक पदार्थ मिलता है। कार्बनिक पदार्थ के विच्छेदन से कार्बन डाइआक्साइड मिलती है। यह अनेक विलेय कार्बोनेट व बाइकार्बोनेट बनाती है। पोटैशियम व फासफोरस सुपाच्य सरल यौगिकों में परिवर्तित हो जाते हैं। भूमि की सार विनिमय क्षमता बढ़ जाती है।

जैविक प्रभाव

जीवाणुओं की संख्या व क्रियाशीलता बढ़ती है। जीवाणु जटिल नाइट्रोजनीय पदार्थों को अमोनिया व नाइट्रेट आयनों में बदल देते हैं। इन्हें पौधे सहज ले सकते हैं। वायुमण्डल का नाइट्रोजन स्थिर हो जाता है। भूमि की उर्वरता बढ़ती है तथा जीवाणुओं द्वारा मिट्टी से पोषक तत्त्व सीधे पौधे को पहुंचते हैं, यह विशेष उल्लेखनीय प्रभाव है।

प्रयोग विधि

गोबर की कच्ची खाद खेत में नही डाली जानी चाहिये अन्यथा दीमक लग जाती है। फिर खाद के सड़ने (विच्छेदित होने) में भी समय लगता है। इसको रेतीली भूमि में अच्छी प्रकार सड़ी हुई खाद मिलानी चाहिये। भारी चिकनी भूमि में अंशत: सड़ी हुई खाद लाभदायक है। मध्यम या भारी संरचना की भूमि में यह खाद पतझड़ या सर्दी में, खेत तैयार करने से पहले भूमि में मिलायी जाती है। रेतीली या पहाड़ी भूमि में पहले खाद देना उचित नहीं होता। कटाव या अपक्षालन द्वारा काफी खाद नष्ट हो जाती है।

खाद देते समय इसे पूरे खेत में फैलाना चाहिये। खाद को खेत में मिलाकर शीघ्र ही मिट्टी में मिला देना चाहिये। भारी मिट्टी में खाद कम गहराई तक और हलकी मिट्टी में अधिक गहराई तक दी जानी चाहिये। यदि खाद की कम मात्रा उपलब्ध हो, तो इसे ढेरों के रूप में देना अच्छा रहता है। खाद के ढेर फसल के पौधों के पास लगाने चाहिये। उद्यान में फलों के पेड़ों के तने से दूर मूल क्षेत्र में ये ढेर लगाने चाहिये। खेत में खाद का उचित उपयोग करने के लिए आवश्यक है कि खेत में डालने के बाद इसे जुताई द्वारा मिट्टी में मिला देना चाहिये। कठोर व शुष्क भूमि को सिंचाई करके नरम व जोतने योग्य बना लेना चाहिये। आजकल अच्छी सड़ी खाद को लम्बी अवधि वाली फसलें, जैसे गन्ना इत्यादि में बुवाई के समय या पहली सिंचाई के साथ भी देने लगे हैं।

इस खाद में फासफोरस की बहुत कमी होती है, अत: इसे पूर्ण या सन्तुलित बनाने के लिए इसमें फासफोरस उर्वरक मिलाया जाता है। यह पुनर्वलन कहलाता है। फासफोरस उर्वरक अलग से भी खेत में दिया जा सकता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि खाद एक टन प्रति एकड़ देनी हो, तो डेढ़-दो किलो प्रति टन सुपरफासफेट मिला देते हैं।

आलू, गोभी, तम्बाकू, मक्का, कपास, गन्ना आदि के लिए गोबर की खाद अति उपयोगी सिद्ध हुई है। जाड़े की ऋतु में यह गेहूं के लिए लाभदायक है। गेहूं के साथ बोयी फलीदार फसल के लिए भी यह उपयुक्त है।

कृत्रिम या संश्लेषित गोबर की खाद को कम्पोस्ट कहते हैं। पौधों व जीवों के अवशिष्ट का बैक्टीरिया व फुंगी (कवकानि) आदि द्वारा विच्छेदन होने से यह पदार्थ बनता है। यह गहरे भूरे रंग का पदार्थ रंग तथा गुणों में गोबर की खाद के समान है। इसको कूड़ा खाद भी कहते हैं। इसे बनाने की प्रक्रिया को कम्पोस्ट बनाना कहते हैं।

कम्पोस्ट का प्रयोग यूं तो पिछली शताब्दी में प्रारम्भ हो गया था परन्तु इसका वैज्ञानिक अध्ययन १९२१ में हचिनसन व रिचर्ड्स ने किया। उन्होंने भूसे से कम्पोस्ट बनाया। भूसे का जीवाणुओं द्वारा विच्छेदन किया गया। उदासीन या निर्बल क्षारीय माध्यम में यह क्रिया बड़ी तीव्र हुई। किण्वन द्वारा इस विच्छेदन में जीवाणुओं की क्रियाशीलता के लिए भोजन, वायु व जल आवश्यक है। इस खोज के पश्चात् कम्पोस्ट के सम्बन्ध में अनुसन्धान कार्य बड़ी तेजी से हुआ। भूसे के स्थान पर घर का कूड़ा, कचरा इत्यादि विभिन्न पदार्थ कम्पोस्ट बनाने के लिए प्रयुक्त किये गये। वास्तव में गोबर की खाद की कमी को पूरा करने के लिए कम्पोस्ट पर अधिक कार्य हुआ, अतः इसका महत्त्व भी बढ़ गया।

कम्पोस्ट बनाने के लिए आवश्यक पदार्थ

१. कार्बनिक कूड़े-कचरे का भंडार, २. प्रारम्भक, ३. जल, ४. वायु, ५. नाइट्रोजन प्रेरक व चूने का पत्थर।

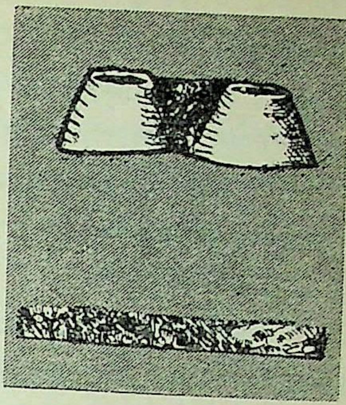

पशुओं के मल और मूत्र अलग-अलग एकत्र किये जाते हैं (ऊपर); बिछावन में विभिन्न अनाजों का भूसा, घास, पत्तियां, लकड़ी का बुरादा आदि की तह होती है (नीचे)

कार्बनिक कूड़े-कचरे का भंडार

यह निम्नलिखित साधनों से प्राप्त होता है : (१) फार्म का कूड़ा-कचरा, (२) पशुओं का बिछावन, (३) पशुओं के भोजन से बचा चारा, (४) सूखी या ताजा पत्तियां, (५) विभिन्न घासें, (६) खर-पतवार, (७) गन्ने आदि की पत्ती, (८) सब्जीमंडी का कचरा, (९) शहर-मुहल्ले का घूरा।

प्रारम्भक

कूड़े-करकट के अपार भंडार को कम्पोस्ट में बदलने के लिए 'जामन' देने की आवश्यकता होती है। इस पदार्थ को प्रारम्भक या प्रवर्तक कहते हैं। यह निम्नलिखित में से कोई होता है : (१) गोबर, (२) मानव मल, (३) मूत्र, (४) गन्दे नाले का पानी, (५) अवपंक या अवमल, (६) सोडियम नाइट्रेट, (७) कैल्शियम सायनेमाइड, (८) ऐमोनियम सल्फेट।

जल

कम्पोस्ट बनने में जल की मात्रा का नियन्त्रण आवश्यक है। जल की मात्रा लगभग ५% होनी चाहिये। जल की मात्रा कम होने से जीवाणुओं की क्रियाशीलता कम हो जाती है जिससे कम्पोस्ट बनाने में बाधा पड़ती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाष्पीकरण तथा प्रस्राव द्वारा भी जल की हानि होती है, अतः कम्पोस्ट में समय-समय पर पानी मिलाते रहना चाहिये। एक सप्ताह तक किण्वन हो चुकने के बाद कम्पोस्ट के ढेर को मिट्टी से लीपकर भी बाष्पीकरण द्वारा जल की हानि को रोका जा सकता है।

वायु

कम्पोस्ट बनाने की प्रारम्भिक अवस्था में वायु की विशेषतः अधिक आवश्यकता पड़ती है। अधिकतर क्रियाएं वातापेक्षी जीवाणुओं द्वारा होती हैं, अतः वायु की उपस्थिति जीवाणुओं की क्रियाशीलता के लिए आवश्यक है। कम्पोस्ट के ढेर को १०–१५ दिन में एक बार उलटने-पलटने से भी उसमें वायु पहुंच जाती है। वायु की पर्याप्त उपस्थिति से कम्पोस्ट जल्दी बन जाता है।

नाइट्रोजन उर्वरक व चूने का पत्थर

कम्पोस्ट में प्रायः नाइट्रोजन की कमी होती है। प्रथम तो कूड़े-कचरे में ही नाइट्रोजन की मात्रा कम होती है, दूसरे जीवाणु भी अपने पोषण के लिए नाइट्रोजन लेते हैं। नाइट्रोजन की कमी से अम्लीयता बढ़ती है अर्थात् कम्पोस्ट का PH कम हो जाता है। अम्लीयता बढ़ने से जीवाणुओं की क्रियाशीलता कम हो जाती है। जीवाणुओं के लिए अनुकूलतम माध्यम उदासीन या निर्बल क्षारीयता है। अतः जीवाणुओं की सक्रियता बनाये रखने एवं PH नियन्त्रण के लिए कम्पोस्ट में नाइट्रोजन उर्वरक तथा चूने का पत्थर मिला देते हैं।

कंम्पोस्ट बनाने की विधियां

१. एडको विधि, २. उत्प्रेरित कम्पोस्ट विधि, ३. इन्दौर विधि, ४. बंगलौर विधि।

एडको विधि

यह सबसे पुरानी विधि है। हचिनसन व रिचर्ड्स ने इंग्लैंड में १९२१ में सर्वप्रथम इसे प्रकाशित किया था। इसमें कम्पोस्ट बनाने के लिए 'एडको' चूर्ण प्रयोग करते हैं। 'एडको' इंग्लैण्ड की एग्रीकल्चरल डेवलेपमेंट कम्पनी का सूक्ष्म नाम है। इस चूर्ण के अवचव व्यापारिक रहस्य हैं। फाउलर के अनुसार यह अमोनियम फासफेट, सायनेमाइड व यूरिया से बनाया जाता है। कोलिसन व कोन के अनुसार 'एडको' में अमोनियम सल्फेट, सुपरफासफेट, पोटैशियम क्लोराइड व चूने का पत्थर होता है।

इस विधि में पहले भूसे आदि की एक फुट गहरी तह १० वर्ग गज भूमि पर बिछायी जाती है। इसको भिगोकर इस पर ७% 'एडको' चूर्ण छिड़क देते हैं। छह बार यह क्रिया दोहराई जाती है। जब ७' ऊंचा ढेर बन जाता है, तो इसे तीन सप्ताह के लिए छोड़ देते हैं। यदि आवश्यकता होती है, तो केवल जल छिड़कते हैं। फिर यदि सड़ना तीव्र न हो तो ढेर को उलट-पलट सकते हैं।

यह विधि भारत-जैसे गरम देश के लिए उपयुक्त नहीं है। यहां गरमी के कारण नमी की कमी हो जाती है जिससे किण्वन रुक जाता है। तापक्रम में भी असमानता रहती है।

उत्प्रेरित कम्पोस्ट विधि

यह विधि फाउलर व रेंज ने १९२२ में प्रकाशित की। इसमें घास, पत्तों, घर का कूड़ा-करकट, खेत-बगीचे का सब कचरा एक गड्ढे में इकट्ठा करते रहते हैं। अवकाश के समय इस गड्ढे में से निकालकर ७' लम्बा व २' ऊंचा ढेर लगा लेते हैं। फिर एक मन ताजा गोबर लेकर, उसमें पानी मिला पतलाकर ढेर को इसमें भिगा देते हैं। इस पर समय-समय पर जल छिड़ककर गीला करते हैं तथा कुरेदते रहते हैं। पहले तापक्रम बढ़ता है और फिर घटता है। ढेर भुरभुरा हो जाता है। उसका रंग भूरा हो जाता है तथा मिट्टी की-सी गन्ध आती है। इस विच्छेदित पदार्थ में उत्प्रेरक या प्रारम्भक की उत्पत्ति हो जाती है, अर्थात् इस प्रकार कार्बनिक कूड़ा-करकट में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कम्पोस्ट को उत्प्रेरित करने वाला पदार्थ उत्पन्न कर लिया जाता है। इस पदार्थ से अब कम्पोस्ट की अधिक मात्रा बनायी जा सकती है।

इस ढेर में से एक तिहाई लेकर दूसरे ढेर में मिलाकर उसे बीच-बीच में गोबर के पतले घोल में भिगाकर कम्पोस्ट में बदला जा सकता है। जब किण्वन पूरा हो जाये, तो इसमें से एक तिहाई लेकर दूसरे ढेर में मिलाकर उसे किण्वित किया जा सकता है। इस प्रकार एक बार उत्प्रेरित पदार्थ बना लेने पर उससे निरन्तर कम्पोस्ट बनाने की क्रिया चलती रहती है।

गोबर की अपेक्षा गोमूत्र से अच्छे परिणाम मिले हैं। परन्तु गोमूत्र की प्राप्ति आसान नहीं है। मानव मल व हड्डियों के चूरे से भी परिणाम अच्छे मिले हैं, पर इनके प्रयोग करने में अनेक बाधाएं हैं।

इन्दौर विधि

इस विधि को हावर्ड और वार्ड ने विकसित किया। इसमें गाय का गोबर प्रवर्तक, प्रारम्भक की तरह प्रयोग किया गया, क्योंकि इस विधि पर पादप उद्योग संस्थान इन्दौर में काम किया गया था, अतः यह इन्दौर विधि के नाम से प्रसिद्ध है। इस विधि को विश्व की सभी कृषि संस्थाओं ने सराहा तथा मान्यता दी है।

इसी विधि में सहुलियत के अनुसार जरा बड़ा मैदान काम में लाते हैं। ३०′ × १४′ × २′ के ३३ गड्ढे बनाते हैं। गड्ढे ढलवां होते हैं, जिससे लदी हुई गाड़ियां गन्तव्य तक पहुंच जायें। गड्ढों को दो-दो के जोड़ों में बनाते हैं और उनके बीच १२′ जगह छोड़ देते हैं। पास के गड्ढों में पानी देने के लिए एक तालाब की व्यवस्था रखते हैं जिसमें ३-४ हजार गैलन पानी आ जाय तथा नलों द्वारा गड्ढों में पानी देते हैं। कम्पोस्ट बनाने के लिए निम्नलिखित पदार्थ लेते हैं—

१. मिश्रित पादप अवशेष, २. पशु मल, ३. मूत्रीय मिट्टी ४. लकड़ी की राख, ५. जल तथा वायु।

गड्ढों पर एक चौड़ा तख्ता रखते हैं, जिससे भरते समय पदार्थ कुचला न जाय। अब गड्ढे के तल पर मिश्रित पादप अवशेष की ३″ मोटी तह सब जगह एक-सी बिछा देते हैं। इसके ऊपर मूत्रीय मिट्टी और लकड़ी की राख छिड़क देते हैं। उसके ऊपर गोबर और बिछावन के लिए प्रयोग की गयी मिट्टी की २″ की तह लगाते हैं। फिर सब पदार्थ को पानी से तरकर गीला करते हैं। शाम को तथा दूसरी सुबह फिर पानी छिड़कते हैं, अर्थात् तीन बार पानी देते हैं। इस प्रकार पदार्थ काफी पानी सोख लेता है और उसमें शीघ्र ही किण्वन प्रारम्भ हो जाता है, पदार्थ का आयतन कम होने लगता है और वह शीघ्र ही गड्ढे के तल से जा लगता है। बाद में हर हफ्ते पानी देते रहते हैं। जीवाणुओं को वायु पहुंचाने के लिए तथा कम्पोस्ट का एकरूप मिश्रण बनाने के लिए पदार्थ को तीन बार उलटा-पलटा जाता है।

पहली बार गड्ढा भरने के १०-१२ दिन बाद पलटते हैं। गड्ढा खोदकर आधा पदार्थ बाहर निकालकर गीला कर लेते हैं। इस गीले पदार्थ को बचे हुए आधे पदार्थ पर बिछा देते हैं। गड्ढे का खोदा गया आधा भाग खाली पड़ा रहता है। दो सप्ताह बाद फिर पलटते हैं। फिर पानी मिलाते हैं तथा खाली पड़े आधे हिस्से में ढेर लगा देते हैं। दो माह पश्चात् तीसरी बार पलटते हैं। अब तक पदार्थ का रंग गहरा भूरा हो जाता है तथा वह भुरभुरा हो जाता है। इसको गीला करके धरातल पर १०′ × ९′ × ३·५′ के ढेर लगाते हैं। इस प्रकार इस ढेर को एक माह तक रखा रहने देते हैं। कम्पोस्ट पककर तैयार हो जाता है। एक माह तक रखा रहने में जीवाणु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वायुमण्डल की नाट्रोजन की काफी मात्रा स्थिर कर लेते हैं। अनुमान है कि यदि कम्पोस्ट सावधानीपूर्वक बनाया जाय, तो नाइट्रोजन की मात्रा में २५% तक की वृद्धि हो जाती है।

वर्षा ऋतु में गड्ढों में पानी भर जाने से कम्पोस्ट बनाने में बाधा पड़ती है। अतः ढेर लगाकर कम्पोस्ट बनाते हैं। २′ ऊंचे ऐसे ढेर लगाते हैं जो आधार पर ८′ × ८′ हों तथा ऊपर ७′ × ७′। यदि वर्षा अधिक हो तो ढेर छाये में लगाते हैं। यदि छाये की व्यवस्था न हो सके, तो वर्षा ऋतु में जून से सितम्बर तक कम्पोस्ट नहीं बनाते।

बंगलौर विधि

इस विधि को भारतीय वैज्ञानिक सी. एन. आचार्य ने कार्यान्वित किया था। इस विधि से सम्बन्धित सब कार्य इंडियन इंस्टीट्यूट आफ साइंस, बंगलौर में हुआ, अतः यह बंगलौर विधि के नाम से विख्यात है। इस विधि में यह लाभ है कि कम्पोस्ट को बार-बार पलटना नहीं पड़ता, जिससे खर्चे में काफी कमी हो जाती है। इस विधि में कम्पोस्ट के कार्बन-नाइट्रोजन अनुपात पर बल दिया जाता है तथा प्रारम्भिक जल की मात्रा पर नियन्त्रण रखा जाता है।

कम्पोस्ट गड्ढों से बनाते हैं। गड्ढे इस प्रकार खोदते हैं कि उनकी लम्बाइयां तो समानान्तर होती हैं, पर चौड़ाइयां एक पंक्ति में होती हैं।

दो गड्ढों के बीच ५′ रिक्त स्थान छोड़ा जाता है। गड्ढों के चौड़ाई वाले किनारों पर मल या कूड़े की गाड़ियां आने-जाने के लिए उपयुक्त रास्ता छोड़ा जाता है। नये गड्ढे खोदते समय मिट्टी निकलती है, उसका गड्ढे की ओर ढेर लगा देते हैं। गड्ढों का आकार नगर की जनसंख्या के अनुसार रखा जाता है।

जनसंख्या	गड्ढे का आकार
१०,००० से कम	२०′ × ६′ × ३½′
१०,००० से २०,००० तक	२५′ × ७′ × ४′
२०,००० से ३०,००० तक	३०′ × ८′ × ४′
३०,००० से ५०,००० तक	३५′ × ८′ × ४′
५०,००० से ऊपर	४०′ × ९′ × ४′

पहले गड्ढे के तल पर ९–१०″ मोटी कूड़े-कचरे की तह बिछाते हैं। उसके ऊपर ३″ मोटी मानवमल की तह लगाते हैं। मानव मल की तह लगाना कोई प्रिय कार्य नहीं है। इसकी तह की मोटाई का अनुमान भार के हिसाब से लगाते हैं। कूड़े-करकट को भी भार के हिसाब से गणना करके फैलाया जा सकता है।

१ घनफुट कूड़े-करकट का भार
=लगभग १० किलो
१ ,, मानवमल ,, = ,, ३० ,,
१ ,, कम्पोस्ट ,, = ,, २० ,,

मानवमल की तह को तुरन्त कूड़े-करकट से ढंक देना चाहिये और अन्त में सबसे ऊपर कूड़े-करकट की ९–१०″ मोटी तह होनी चाहिये। इससे एक तो गड्ढे से मक्खियां नहीं पैदा हो पातीं, दूसरे दुर्गन्ध नहीं फैलती। प्रत्येक तह पर यदि आदमी चलकर देखे तो उसका पैर धंसना नहीं चाहिये। कचरे और मानवमल के उचित अनुपात का यही माप-दंड है। यदि पैर धंसता है, तो मल का अनुपात अधिक है।

गड्ढे को भूतल से १′ ऊपर तक भर देना चाहिये। गड्ढा भरने के ४-५ दिन बाद ढेर में काफी ताप उत्पन्न हो जाता है। तापक्रम ७०° सें० तक पहुंच जाता है। गड्ढे को एक ओर से १-१·५ फुट खोदकर ताप की जांच की जा सकती है। यह ताप लगभग एक मास तक रहता है। इसके दो लाभ हैं: १. कचरे व कूड़े-करकट का विच्छेदन हो जाता है, २. मल व कचरे में साधारणतः पाये जाने वाले रोगजनक कीटाणु मर जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कम्पोस्ट	N_2%	P_2O_5%	K_2O%
१. नगर के कचरे, मल से बनायी गयी	१·२	१·०	१·५
२. गांव के कचरे आदि से ,,	०·४-०·८	०·३-०·६	०·७-१·०
३. इन्दौर विधि से ,,	१·०	०·५	३·०
४. खरपतवार से ,,	२·०९	०·८६	...
५. चाय बागान के कचरे से ,,	१·३	०·५	३·०
६. केले के उद्यानों के कचरे से ,,	१·८७	०·४३	०·४५

कुछ कम्पोस्टों में नाइट्रोजन, फासफोरस तथा पोटैशियम की मात्रा

चार माह में पूर्ण विच्छेदन हो जाता है। पूर्ण विच्छेदित पदार्थ गन्धहीन होता है। इसी को कम्पोस्ट कहते हैं। यह गोबर की खाद से उत्तम है। इस विधि में संशोधन करके फार्म अवशिष्ट गोबर व मूत्र इत्यादि का भी प्रयोग कर सकते हैं।

कम्पोस्ट ढेरों में भी बनायी जाती है। यदि विच्छेदित पदार्थ के शीघ्र ठंडा व शुष्क होने की सम्भावना हो तो गड्ढों में कम्पोस्ट बनानी चाहिये। परन्तु जहां जल स्तर भूतल के ही निकट हो वहां गड्ढों में पानी आ जाने का भय रहता है। कुछ पोषक तत्त्वों का भूमि—जल में विलेय होकर नष्ट हो जाने का डर भी रहता है। ढेरों में बनायी जाने वाली खाद को वायु भी अधिक मिलती है, किन्तु ढेरों की आंधी व वर्षा से रक्षा की व्यवस्था होनी चाहिये।

कम्पोस्ट की रचना

कम्पोस्ट की रचना स्थिर नहीं होती। इसकी रचना इसको बनाने के लिए प्रयुक्त पदार्थों—कूड़ा करकट, प्रारम्भक तथा प्राप्त पदार्थों—पर निर्भर करती है। फिर नगर और गांव, खेत और बाग के कचरे में भी अन्तर होता है। कुछ कम्पोस्टों में नाइट्रोजन, फासफोरस व पोटैशियम की मात्रा उपर्युक्त तालिका के अनुसार होती है।

कम्पोस्ट का भूमि पर प्रभाव

भौतिक—भूमि की संरचना सुधरती है रेतीली मिट्टी सघन हो जाती है तथा मटियार भुरभुरी हो जाती है। भूमि की जलधारण व उष्मा शोषण क्षमता बढ़ती है। भूमि की पारगम्यता भी बढ़ती है। निकासी में सुविधा होती है। क्षार व लवण भूमि खेती योग्य हो जाती है।

रासायनिक

कार्बनिक अवशेष से बनाये जाने के कारण इसमें पौधे के लिए आवश्यक सभी पोषक तत्त्व होते हैं। कम्पोस्ट के विच्छेदन से पोषक तत्त्व पौधों को शीघ्र प्राप्त हो जाते हैं। विच्छेदन में कार्बन डाइआक्साइड बनती है। भूमि-जल में विलेय होकर यह कार्बनिक अम्ल बनाती है। अनेक अघुलनशील लवण कार्बनिक अम्ल में विलेय होकर पौधों को सुपाच्य रूप में प्राप्त होते हैं।

जैविक

कम्पोस्ट में असंख्य जीवाणु होते हैं जिनके द्वारा नाइट्रीकरण, अमोनियाकरण तथा नाइट्रोजन स्थिरीकरण में वृद्धि होती है। धरण बढ़ता है। पादप हार्मोन भी कम्पोस्ट में पाया जाता है।

कृत्रिम या संश्लेषित गोबर की खाद ही कम्पोस्ट है। इसका उपयोग गोबर की खाद की तरह ही किया जाता है। नाइट्रोजन या फासफोरस पूरक उर्वरक मिला लेने से यह एक तरह से सम्पूर्ण खाद बन जाती है। ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

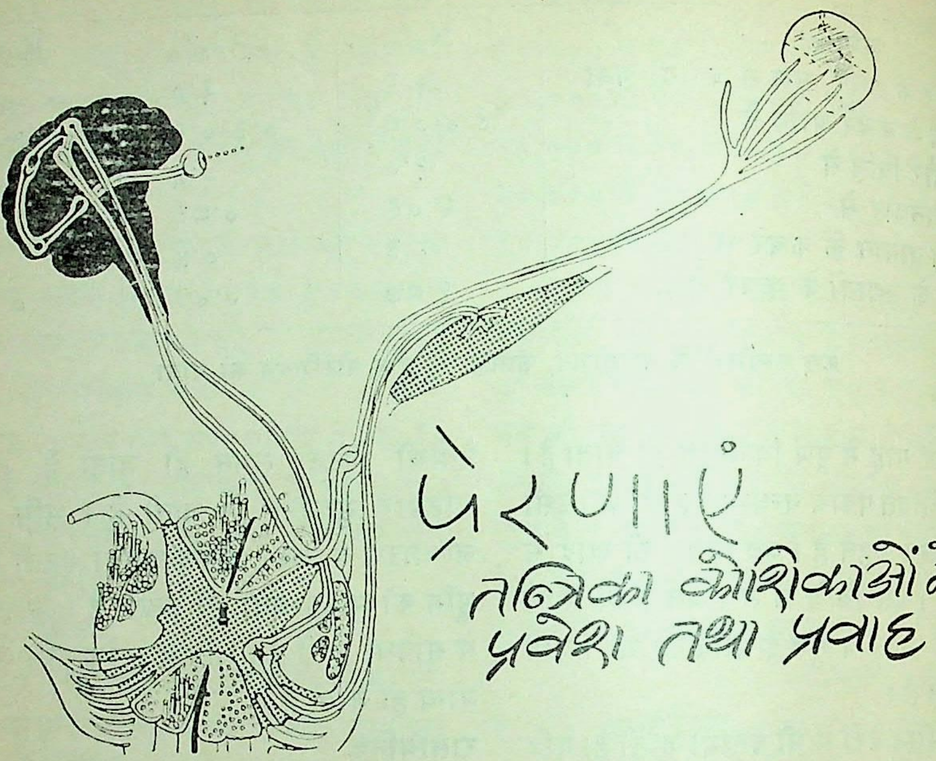

प्रेरणाएं
तन्त्रिका कोशिकाओं में प्रवेश तथा प्रवाह

डा. महेश्वरसिंह सूद, एम.एस-सी., पी-एच.डी.

प्रत्येक सजीव की चेतना की अपनी सीमा होती है और इसी के अनुसार उसमें अनुक्रियाशीलता आती है। सजीव कितना सचेत है यह उसकी प्रवृत्तियों के ग्रहण करने की शक्ति पर निर्भर होता है। प्रवृत्तियां तन्त्रिका कोशिकाओं द्वारा प्राप्त की जाती हैं जो विभिन्न रूप और नाप की होती हैं। पिछली शताब्दी के अन्त में स्पेन के 'सेंटियागो रमन वाई कजाल' नामक रचनाविज्ञानवेत्ता ने यह स्पष्ट कर दिखाया कि तन्त्रिका कोशिकाओं में सामान्य कोशिकाओं की तरह न्यूक्लियस और कोशिका द्रव्य तो होता ही है, पर इसके अतिरिक्त बाह्य तल पर अनेक बहुशाखीय प्रवर्धन होते हैं जो प्रेरणा-सम्बन्धी होते हैं और जिनके द्वारा प्रेरणाएं ली जाती हैं तथा कोशिकाओं को प्रेषित की जाती हैं।

तन्त्रिका कोशिका में प्रेरणाओं का प्रवेश

ऐसे कोशिका प्रवर्ध जो पृष्ठ दिशाओं में होते हैं, वृक्ष की शाखाओं की तरह फैले हुए होते हैं। इनको अभिवाही प्रवर्ध कहते हैं, क्योंकि इनके द्वारा तन्त्रिका कोशिका में प्रेरणाएं प्रवेश करती हैं। अधर दिशा में केवल एक ही प्रवर्ध होता है जिसको संतन्तु कहते हैं, इसके द्वारा प्रेरणाएं सम्प्रेषित होती हैं। अक्षतन्तु का एक छोर बहुत छोटी शाखाओं में बंटा होता है, जो दूसरी तन्त्रिका कोशिका के अभिवाही प्रवर्धों के समीप फैला होता है। अक्षतन्तु की लम्बाई मिलीमीटर के कई दशमलव से लेकर एक मीटर तक की होती है। सबसे लम्बे अक्षतन्तु मांसपेशियों को संचालित करने वाले होते हैं। अक्षतन्तु की आकृति बिजली या टेलीफोन के बटे हुए मोटे तार की रस्सी की तरह की होती है और ये विशेष रूप से तन्त्रिका प्रेरणा प्रवाह के उपयुक्त बने होते हैं। इनमें होकर प्रेरणाएं एक मीटर प्रति सेकंड की चाल से सौ मीटर प्रति सेकंड की चाल तक चलती नापी गयी हैं। एक तन्त्रिका कोशिका दूसरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तन्त्रिका कोशिका से चिपकी हुई नहीं होती है और न ही इनका कोई भाग एक-दूसरे से लगता रहता है। इनके मध्य में स्थान छूटा रहता है और इसको सर्वप्रथम चार्ल्स शेरिंगटन ने देखा और इसका नाम अन्तर्ग्रन्थन दिया।

एक पृथक विज्ञान की उपशाखा

इस रचना विशेष के महत्त्व का आभास इसी तथ्य से जाना जा सकता है कि इसके आधार पर एक पृथक विज्ञान की उपशाखा ही स्थापित हो गयी है जिसे अन्तर्ग्रन्थन विज्ञान कहा जाता है। इसके अन्तर्गत इस विषय का प्रतिपादन रहता है कि किस प्रकार एक कोशिका से दूसरी कोशिका में प्रेरणाएं पहुंचती हैं। विद्युत अणुवीक्षण यंत्र के द्वारा देखने से यह स्पष्ट हो गया है कि एक कोशिका से दूसरी कोशिका में अन्तर्प्रेरणाएं वितानों में विशेष प्रकार से फैली हुई अन्तर्ग्रन्थि गांठों से अत्यन्त वेग से छोड़े जाने वाले सम्प्रेषित पदार्थों की तरह जो पिचकारी की तरह छूटते हैं, पहुंचती हैं। अन्तप्रेरणा को अन्तर्ग्रन्थन से परे जाना है तो यह अति आवश्यक प्रतीत होता है कि अन्तर्प्रेरणा का दूसरी कोशिका के सिरे पर पुनर्जनन हो। पन्द्रह वर्ष पूर्व तक क्रिया-विज्ञान-वेत्ताओं का यह दृढ़ निश्चय रहा कि अन्त-प्रेरणा का पुर्नजनन एक विद्युत प्रपंच होता है परन्तु अब यह पूर्ण-रूप से सिद्ध किया जा चुका है कि यह विद्युत प्रपंच नहीं है, अपितु यह विशिष्ट रसायनों के छूटने के कारण होता है जो पिचकारी द्वारा छोड़े जाने वाले सम्प्रेषित रसायन होते हैं। इनसे ही अन्त-प्रेरणा एक तन्त्रिका कोशिका से दूसरी तन्त्रिका कोशिका में पुनर्जनन करती हुई प्रवाह करती है। रचना-विज्ञानवेत्ताओं और क्रिया-विज्ञानवेत्ताओं, दोनों ने ही यह जान लिया है कि मनुष्य के केन्द्रीय तन्त्रिका तन्त्र के अंगों में जिनमें सुषुम्ना और मस्तिष्क दोनों ही सम्मिलित हैं, लगभग दस खरब इस प्रकार की तन्त्रिका कोशिकाएं होती हैं और इनकी संख्या ही चेतना की चरम शक्ति, सीमा प्रदानकरती है। जिनमें इनकी संख्या अधिक होती है वे अधिक ज्ञानी होते हैं और जिनमें इनकी संख्या कम होती है, वे उसी अनुपात से कम बुद्धि वाले होते हैं। वैज्ञानिकों ने यह भी पूर्णरूप से निर्धारित कर लिया है कि प्रत्येक तन्त्रिका कोशिका की चेतना की सीमा, शक्ति अनेक उपायों से घटायी या बढ़ायी जा सकती है। और इनमें सबसे बड़ा उपाय परि-स्थितियों के प्रति जागरुकता का अभ्यास ही माना जाने लगा है।

मानव : एक सर्वश्रेष्ठ रचना

वर्तमान में सजाव या प्राणियों में मानव ही सर्वश्रेष्ठ रचना माना जाता है। मानव में ज्ञान-शक्ति है और इसी के सहारे वह अपने को श्रेष्ठ मानता है। मानव संसार की सब वस्तुओं, जीव, जन्तु, वनस्पति आदि के सम्बन्ध में ज्यादा से ज्यादा जानना चाहता है, और जैसे-जैसे विज्ञान के साधनों में उन्नति होती जाती है, वह दिन प्रति दिन और अधिक जानता ही चला ज़ा रहा है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि जिस समय कोई तथ्य मालूम न था तब वह तथ्य नहीं था, अपितु उस समय तक मानव के पास ऐसे साधन नहीं थे कि वह उन्हें जान सकता। यह भी हो सकता है कि उस समय मानव को उसकी आवश्यकता ही प्रतीत न हुई और उसने उस तथ्य के सम्बन्ध में जानने का प्रयास ही नहीं किया। इस कारण वह तथ्य जिसे हम मालूम होने पर नवीन कहते हैं पता न चल पाया। मानव ने स्वयं अपने शरीर की आकृति और प्रकृति को जानने के प्रयास किये हैं और सबसे अधिक समय और शक्ति वैज्ञानिकों ने अपने को ही जानने में लगायी है, फिर भी मानव अपने को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्णरूप से जान नहीं पाया है। आज तक मानव को यह पता नहीं है कि सजीव किस प्रकार अनेक कार्य करते हैं। उसे मालूम है कि चाहे सजीव एक कोशिकीय हो अथवा बहुकोशिकीय, उसके शरीर के कार्य तन्त्रिका संस्थान द्वारा ही नियन्त्रित एवं संचालित होते हैं। प्रत्येक सजीव का यह प्रयास होता है कि वह अपने-आपको अधिक से अधिक बाह्य परिस्थितियों के अनुकूल बना सके तथा सफल जीवनयापन कर सके। यह वह इतनी सफलता से ही कर पाता है जितना दृढ़ तन्त्रिका संस्थान उसे प्राप्त होता है।

तन्त्रिका नियन्त्रण के अतिरिक्त सजीव में एक अन्य शक्ति

वैज्ञानिक यह भी अब जान गये हैं कि तन्त्रिका नियन्त्रण के साथ-साथ सजीव में कोई और भी शक्ति होती है जो समस्त कार्यों को सम्पादित करने में दृष्टिगोचर होती है। यदि वह शक्ति न होती, तो उनके कार्य जिनका कोई भौतिक सम्बन्ध तन्त्रिका-तन्त्र से होता ही नहीं है, संचालित हो ही नहीं सकते। विज्ञान का लेशमात्र ज्ञान रखने वाले भी भलीभांति जानते हैं कि कोशिकाओं के आधार पर सजीवों को दो स्थूल भागों में बांटा जाता है—एक-कोशिकीय जिनमें शरीर की समस्त प्रक्रियाओं को करने के लिए एक ही कोशिका होती है। वे शरीर के समस्त कार्य इस एक कोशिका द्वारा ही कर लेते हैं। दूसरे, बहुकोशिकीय जिनमें एक से अधिक कोशिकाएं होती हैं। इनमें विभिन्न कार्य करने के लिए पृथक-पृथक कोशिकाएं या कोशिका-समूह होते हैं, अर्थात् इनमें आकृति विभाजन तथा कार्य विभाजन दोनों ही होते हैं और जिस जन्तु में जितना अधिक विभाजन होता है, वह उतना ही जटिल तथा उत्कृष्ट होता है। ऐसे ही प्रकार के जन्तुओं में तन्त्रिका नियन्त्रण के साथ-साथ रसायनिक नियन्त्रण भी रहता है। इसके द्वारा समस्त कोशिकाएं ठीक-ठीक कार्य करती हैं। इनमें बाहर से अन्दर अथवा अन्दर से बाहर रासायनिक पदार्थों का परिवहन और इसके साथ-साथ संवेदनाओं का आदान-प्रदान होता है। इससे जन्तु बाह्य परिस्थिति को जानते हुए अपने-आपको अनुकूल बनाते रहते हैं और जीवित रह पाते हैं। फिर समस्या रसायनों के परिवहन अथवा वितरण की आती है।

हारमोनों के परिवहन की समस्या

सबसे प्रमुख रसायन नलीविहीन ग्रन्थियों के स्राव हारमोन होते हैं और इन्हीं के परिवहन की समस्या सबसे महत्त्वपूर्ण होती है। ये हारमोन किन्हीं कोशिकाओं द्वारा संश्लिष्ट किये जाते हैं और विशिष्ट उत्तेजना पाकर रक्त के साथ मिलते हैं और शरीर के समस्त भागों में वितरित होते हैं। प्रत्येक हारमोन की यह विशेषता होती है कि वह केवल विशेष कोशिकाओं पर ही अपना प्रभाव डाल सकता है, अन्य पर या सब पर नहीं, और इससे सदैव एक ही प्रकार की अनुक्रिया हो पाती है। प्राणी-विज्ञानवेत्ता जानते हैं कि सजीव को उचित जीवन-यापन के लिए हारमोन की प्रर्याप्त मात्रा और वह भी उचित समय और स्थान पर मिलनी आवश्यक है। रक्त के साथ परिवहन होने से हारमोन के वितरण में अनेक सीमाएं रहती हैं। प्रथम, रक्तमंडल में रक्त नलिकाओं की स्वयं अपनी सीमाएं होती हैं। वे प्रत्येक कोशिका से सम्बन्धित नहीं होती हैं तथा चाप आदि की ऐसी परिस्थितियां आ जाती हैं जो कठिनाइयां लाती हैं। द्वितीय, रक्त स्वयं बहुत धीमी गति से घूमने वाला तरल होता है और जब रक्त की स्वयं की ही गति धीमी होती है तो हारमोन जिन्हें इसके साथ घूमना होता है, कैसे शीघ्रता से ऐसे स्थानों पर पहुंच सकते हैं जहां इनकी आवश्यकता होती है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्तु की बदलती परिस्थितियां, बदलता व्यवहार

मानव शरीर में रक्त को सामान्य स्थितियों में शरीर का पूर्ण चक्कर लगाने में बीस सेकंड का समय लगता है, इसलिए हारमोन के जो रक्त के साथ मिलकर चलते हैं परिवहन में भी इतना समय लग जाता है। तृतीय, जैसे-जैसे रक्त घूमता है, हारमोन भी घूमते हैं परन्तु वे अपना प्रभाव विशिष्ट स्थल पर ही डालते हैं, क्योंकि उनकी रासायनिक रचना इस प्रकार की होती है कि वे अधिक प्रभाव डाल ही नहीं सकते हैं, इस कारण जब रक्त उपयुक्त स्थान पर नहीं पहुंचता, तो हारमोन किस प्रकार से उस स्थान पर पहुंच सकते हैं। जन्तु की परिस्थितियां बदलती रहती हैं और उसका व्यवहार भी उनके साथ-साथ बदलता रहता है। आपत्ति काल में, जैसे खाद्य की अनुपस्थिति या किसी अन्य जीवन संकट में और अधिक आवश्यक हो जाता है कि हारमोन शीघ्रता के साथ और आवश्यक शक्ति के अनुसार उचित स्थल पर पहुंचकर प्रतिक्रिया करें। यह तब ही सम्भव हो सकता है जब जन्तु ऐसी परिस्थितियों को शीघ्रातिशीघ्र ग्रहण कर उसके अनुकूल कार्य कर सकें अन्यथा जीवन संकटमय हो जाता है और फिर परिणाम कुछ भी हो सकते हैं। तत्काल आपत्ति को जानने की क्षमता तथा उसके अनुसार कार्य करने की क्षमता तन्त्रिकाएं प्रदान करती हैं। बाहर से समस्त सूचनाएं ज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त होती हैं। ज्ञानेन्द्रियां समस्त मांसपेशियों और ग्रन्थियों को उत्तेजित करती हैं और उनसे उचित कार्य करवाती हैं।

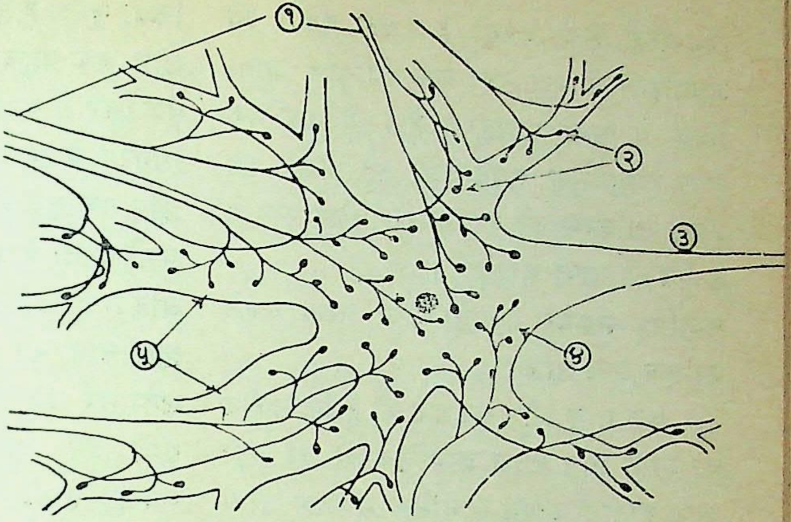

प्रेरक तन्त्रिका-कोष—(१) अभिवाही स्नायु प्रवर्ध, (२) सूत्र युग्मन गांठ, (३) प्रेरक तन्त्रिका का तन्त्रिकाक्ष, (४) प्रेरक तन्त्रिका-कोष, और (५) द्रुमाश्म।

यद्यपि तन्त्रिका सूत्रों का अत्यधिक जाल बिछा होता है, फिर भी प्रत्येक कोशिका तन्त्रिका सूत्र द्वारा बांधी हुई नहीं होती है। यदि ऐसा होता तो एक कठिनाई सजीव के लिए होती; और एक ऐसा विचित्र और जटिल जाल तन्त्रिका सूत्रों का फैल जाता कि वे स्वयं आपस में उलझकर किसी भी कार्य को स्पष्ट रूप में न होने देते और समस्त शरीर में अनिश्चितता सदैव बनी रहती। प्रत्येक अंग से विभिन्न तथा विपरीत आदेश आते-जाते एक और विषम परिस्थिति उपस्थित हो जाती, जिसका सामना करना सजीव के शरीर के वश की बात न रह जाती। इस कारण सजीव में रासायनिक नियन्त्रण का अलग ही महत्त्व होता है। ये तन्त्रिका तन्त्र के साथ मिलकर एक ऐसी परिस्थति बना देते हैं कि समस्त समाचार केन्द्रित होकर मांसपेशियों और ग्रन्थियों का संचालन गठित रूप से और उचित मात्रा में प्राप्त संवेदना शक्ति के अनुरूप करते रहते हैं, जिससे प्राणी बाह्य परिस्थितियों की जानकारी तथा उनके प्रति जागरूकता उचित प्रकार ला पाते हैं। इससे विशिष्ट ज्ञानेन्द्रियों को ज्ञान प्राप्त होता है और वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठीक-ठीक कार्य करती हैं। इस प्रकार की ज्ञानेन्द्रियों में चक्षु तथा कर्ण विशिष्ट ज्ञानेन्द्रियों के अच्छे उदाहरण हैं। ये यान्त्रिक तथा रसायनिक संवेदनाओं को प्राप्त कर बाह्य पर्यावरण की जानकारी विशेष रूप से सजीव को प्राप्त कराते हैं।

मानसिक संक्रमण : बाह्य ज्ञान प्राप्त करने का एक अन्य साधन

एक बात और समझने की है कि सजीव को बाह्य ज्ञान केवल ज्ञानेन्द्रियों से ही नहीं प्राप्त होता है अपितु मानसिक संक्रमण द्वारा भी प्राप्त होता है, अर्थात् दूर स्थित एक मन का दूसरे जन्तु के मन पर भी प्रभाव पड़ता है। टैलीपेथी में एक ही जन्तु की अपनी ही मस्तिष्क प्रक्रियाएं कार्य नहीं करती हैं, अपितु अन्य व्यक्ति जो अपने विचार दूर से ही देता है, उसकी ज्ञानेन्द्रियां और अपनी विचार शक्ति मिलकर एक प्राणी जैसा ही तन्त्रिका तंत्र बनाते हैं और जिस प्रकार एक व्यक्ति की ज्ञानेन्द्रियां और मस्तिष्क मिलकर कार्य करते हैं ठीक उसी प्रकार टैलीपेथी में दो प्राणियों के विभिन्न भाग एक-दूसरे के पूरक भागों की तरह कार्य करते हैं, और एक प्राणी-जैसा ही तन्त्र बना देते हैं जिससे एक प्राणी के विचार दूसरे प्राणी में आ जाते हैं और कार्य होने लगता है।

शरीर में प्रेरणाओं का आदान-प्रदान

तन्त्रिकाएं शरीर में किस प्रकार प्रेरणाओं का आदान-प्रदान करती हैं यह भी हमें समझ लेना होगा। तन्त्रिकाओं की कार्य विधि ताप के परिचलनों की विधियों से कहीं भिन्न होती हैं। ताप के परिचलन की अनेक विधियां, हैं उनमें से धातु की छड़ का परिचलन और सिगरेट के जलने के परिचलन को यदि हम ठीक-ठीक समझ लें तो तंत्रिका द्वारा प्रेरणाओं के परिवहन को भी आसानी से समझ सकेंगे। धातु की छड़ के एक सिरे को जब गरम किया जाता है तो ताप धातु की छड़ के अन्तिम छोर तक पहुंचता है, परन्तु जब सिगरेट को एक सिरे से गरम करते हैं अथवा जलाते हैं तो सिगरेट में ताप आरम्भिक छोर से अन्तिम छोर तक तब ही पहुंचता है। जब वह जलती चली जाती है अन्यथा ताप न तो आगे बढ़ेगा और न ही अन्तिम छोर गरम होगा। धातु की छड़ ताप का सुचालक होने के कारण ताप लगातार बढ़ता ही जाता है जब तक कि गर्मी देने वाले के समान उसका ताप सब ही भागों में नहीं हो जाता है। सिगरेट ताप का कुचालक होता है, इस कारण इसमें ताप एक स्थान पर ही बढ़ता है और उस स्थान के जल जाने या भस्म हो जाने पर अर्थात् इतने ताप पर हो जाने पर कि वह जल जाय, ताप आगे की ओर बढ़ता है और इसी प्रकार एक भाग के भस्म हो जाने पर दूसरे भाग में पहुंचता है, इसी प्रकार अन्त तक पहुंचता है। दूसरे शब्दों में यों कहा जा सकता है कि छड़ में ताप एक कण से दूसरे कण में बहता हुआ चलता चला जाता है अर्थात् वह सक्रिय होता है, जबकि सिगरेट में परिचलन निष्क्रिय होता है। दियासलाई या माचिस की जलती हुई तीली सिगरेट के जलने को आरम्भ करा देती है और उसका कार्य सिगरेट के जलाने को आरम्भ करा देने तक ही सीमित होता है। इसके पश्चात् जब सिगरेट जलना आरम्भ कर देती है तब उसका कागज या तम्बाकू जलने लगता है और ताप प्रत्येक कण को समाप्त करता हुआ आगे बढ़ता है।

दियासलाई या माचिस तो केवल रसायनिक परिस्थितियों को आरम्भ कराने भर की जिम्मेदार होती है, और जब एक बार उसका जलना आरम्भ हो जाता है, माचिस की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती है, अर्थात् आरम्भकारी का प्रभाव संलग्न नहीं होता है। सिगरेट की चमक और जलना उसका अपना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तक्षण होता है, उसका सम्बन्ध मूल कारण (स्रोत) पर कभी भी नहीं रहता है। धातु की छड़ में ताप का परिचलन तार द्वारा समाचार भेजने के समान होता है जबकि सिगरेट में ताप का परिचलन आंशिक रूप से। तन्त्रिकाओं में प्रभाव एक बिन्दु से दूसरे बिन्दु तक स्थानीय विद्युत एवं रसायनिक विभव के कारण होता है। इनमें प्रभाव अथवा प्रोत्साहन फासले से घटता नहीं है।

प्रोत्साहन (उत्तेजना) की शक्ति तथा उसका अनुभव, प्रोत्साहन की शक्ति पर निर्भर नहीं रहता है, बल्कि यह तन्त्रिका की स्थिति पर निर्भर होता है। यदि तन्त्रिका ठीक होती है, अर्थात् उसमें शक्ति को ग्रहण करने की शक्ति अधिक होती है तो जन्तु पर अधिक प्रभाव पड़ता है। इसमें कल्पना का अधिक भाग होता है। मस्तिष्क में इतनी शक्ति होती है कि वह कभी-कभी वास्तविक प्रभाव के अतिरिक्त भी बहुत से अनुभव अपने आप मनगढ़न्त रख लेता है और ऐसा समय-समय पर जो प्रभाव उसको प्राप्त हुए होते हैं उनके कारण हो पाता है। मस्तिष्क विभिन्न समय के प्राप्त अनुभवों को अन्य समय में भी केवल कल्पना के आधार पर मिश्रित कर लेता है, इस कारण समस्त सजीव में विशेषकर मानव में मिश्रित प्रभाव ही होते हैं। प्रयोगों के आधार पर वैज्ञानिकों ने यह ठीक-ठीक जान लिया है कि तन्त्रिकाएं सजीव की सबसे आवश्यक तथा अच्छी सेवक होती हैं।

यह भी भलीभांति देख लिया गया है कि तन्त्रिकाएं सजीव की मृत्यु के साथ मृत नहीं होती हैं। किन्हीं में तो सजीव की मृत्यु होने के पर्याप्त समय के बाद तक जीवित बनी रहती हैं।

जीव में तन्त्रिकाएं अन्दर व बाहर रासायनिक घोलों से घिरी हुई होती हैं और इनमें विद्युत विभव होता है। इसको सिद्ध करने के लिए निम्नलिखित प्रयोग किया जा सकता है।

एक प्रयोग

तन्त्रिका के एक टुकड़े को सजीव के शरीर में से निकालकर, एक कांच की नली में सोडियम क्लोराइड के घोल में रखकर (केवल इसलिए कि वह सूखने न पाय) तार द्वारा वोल्ट मीटर से जोड़ दिया जाता है और फिर बिजली के तार को तन्त्रिका के अन्दर डाल देने से विद्युत धारा का अनुभव वोल्ट मीटर पर दिखायी देता है। सामान्य रूप से तन्त्रिका झिल्ली में $\frac{1}{२०}$ वोल्ट का अन्तर देखा गया है। इससे ही तन्त्रिका में संवेदना ले जाने की शक्ति प्राप्त होती है। तंत्रिकाओं में स्वयं अपनी बैटरी बनाने की शक्ति होती है और यह शक्ति तन्त्रिका के अन्दर उपस्थित रासायनिक घोलों के कारण होती है। यदि तन्त्रिका में से इस रसायन को निकालकर देखा जाय तो पता चलता है कि तन्त्रिका के अन्दर पोटेशियम का घोल होता है, जिसकी शक्ति बाह्य उपस्थित घोल से ३० गुना अधिक होती है। तन्त्रिका के ऊपर की झिल्ली पोटैशियम के लिए अगम्य (दुर्भेद्य) नहीं होती है। और जबकि सामान्य नियमों के अनुसार घोलों का चलन पतले द्रव से गाढे द्रव की ओर होता है, फिर भी तंत्रिका के अन्दर से पोटैशियम बाहर नहीं आता है, इसका एक मात्र कारण विद्युत का होना होता है। घोल में पोटैशियम के कण धनात्मक विद्युत लिये होते हैं जो बाह्य उपस्थित क्लोराइड से जो ऋणात्मक विद्युत वाले हैं, उदासीन हो सकते हैं। परन्तु सजीव में प्रोटोप्लाज्म से सटे होने के कारण विद्युत आकर्षण वहां सदैव बना रहता है और यह कभी भी तंत्रिका से पृथक नहीं हो पाता है।

तन्त्रिकाओं में सक्रियता उत्तेजना की शक्ति पर निर्भर नहीं होती

प्रयोगों द्वारा यह भी सिद्ध किया जा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चुका है कि तंत्रिकाओं की सक्रियता उत्तेजना की शक्ति पर निर्भर नहीं होती है। उसकी अपनी निहित शक्ति होती है और उसी के अनुसार इसमें परिवर्तन आते हैं। नीचे के चित्र के अनुसार यदि तंत्रिका को बिजली के झटके से 'स' के स्थल पर उत्तेजित कर दिया जाय जो 'ट' बिन्दु से कुछ दूरी पर हो तो पता चलेगा कि कम शक्ति की विद्युत से अर्थात झटके से कोई प्रभाव नहीं होगा और इसी प्रकार दूसरी बार अधिक शक्ति के झटके से भी कुछ प्रभाव नहीं होगा। इससे निष्कर्ष निकलता है कि उत्तेजना की शक्ति से कोई प्रभाव में अन्तर नहीं होता है। वोल्ट मीटर तो केवल चेतना की सीमा पर अर्थात चरम बिन्दु जहां चेतना प्रति उत्तर देती है, प्रभाव दिखाता है। समस्त उत्तेजनाएं जो चरम बिन्दु से अधिक शक्ति वाली होती हैं, वे सबकी सब एक-सा ही प्रभाव दिखाती हैं और जो चरम बिन्दु से कम शक्ति वाली होती हैं वे कुछ भी प्रभाव नहीं दिखाती हैं, क्योंकि वे विद्युत विभिन्नता नहीं ला पाती हैं। वैज्ञानिकों ने 'प्रयोगों' द्वारा यह जान लिया है कि उत्तेजनाएं तंत्रिका में बीस मीटर प्रति सेकंड की गति से चलती हैं। यह भी देखा जा चुका है कि अत्यधिक ठंड से तंत्रिकाएं निष्क्रिय हो जाती हैं और उनमें उत्तेजनाओं को ग्रहण करने की शक्ति नहीं रहती है।

यह प्रायः सबने अनुभव किया होगा कि यदि हाथों को ठंडे पानी में बहुत देर रखा जाय तो कुछ देर के बाद हाथ सुन्न हो जाते हैं, अर्थात उनमें चेतना की शक्ति नहीं रहती है। शरीर के किसी भी भाग के सुन्न हो जाने का अर्थ उस भाग की तंत्रिकाओं का क्रिया-शून्य हो जाना होता है। प्रयोगों में यह देखा गया है कि जब तंत्रिका सक्रिय होती है तो तंत्रिका वेष्टन के अन्दर जो पोटैशियम विद्युताकर्षण के कारण रहता है, बाहर की ओर मिली सेकंड की चाल से रसने लगता है। यह प्रसरण तथा विद्युत दोनों के कारण होता है। इस प्रकार प्रेरणाएं तंत्रिका के सहारे प्रवाह करती रहती हैं। जैसे-जैसे प्रवाह आगे की ओर होता जाता है तंत्रिका पुनः पूर्व स्थिति को प्राप्त करती जाती है, अर्थात किसी भी प्रकार की उत्तेजना से किसी प्रकार का परिवर्तन तंत्रिका रचना में नहीं आता है। तंत्रिकाएं तो केवल परिवहन का माध्यम रहती हैं और जिस स्थल पर प्रथम सक्रियता की लहर समाप्त होती है, उसी स्थान से दूसरी लहर आरम्भ हो जाती है। मानव शरीर के सबसे तीव्रगामी तंत्रिका सूत्र हजार उत्तेजनाएं प्रति सेकंड प्रवाह करा सकते हैं यद्यपि प्रकृति में इतनी अधिक उत्तेजनाओं के एक साथ होने की सम्भावना नहीं होती है। अधिक से अधिक कुछ एक उत्तेजनाएं ही एक सूत्र में होकर एक समय में गति करती हैं।

तन्त्रिका से सम्बन्धित एक प्रयोग—(ट) बिजली के तार का सिरा, (व) वोल्ट मीटर और (स) उत्तेजित स्तर

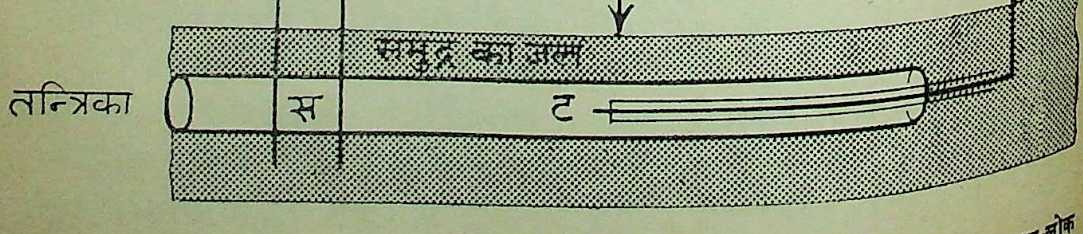

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह तथ्य कि उत्तेजना के प्रवाह के समाप्त होने पर उसी स्थान से दूसरी उत्तेजना के प्रवाह के लिए तंत्रिका सूत्र तैयार रहते हैं। इससे सरलता से हम इस निष्कर्ष पर पहुंच जाते हैं कि तंत्रिकाओं की निहित शक्ति का कभी भी प्रयोग नहीं होता है। और इससे इस तथ्य की भी पुष्टि हो जाती है कि विश्रामिक गर्भित शक्ति शून्य पर न आकर सदैव अपनी पूर्व स्थिति पर ही आती है। तंत्रिकाओं में से शक्ति कभी भी क्षीण नहीं होती है और वे प्रति उत्तर अपनी निहित शक्ति के अनुसार देती हैं, तथा बारम्बार प्रभावित होती रहती हैं।

थकान

सजीव में दो प्रकार की थकान होती हैं—एक तो श्रम द्वारा उत्पन्न, जिसमें मांसपेशियों की थकान होती है। दूसरे, मानसिक थकान, जो केन्द्रीय तंत्रिकातंत्र की थकान होती है। मानसिक थकान लगातार सोचने से या एक-सा ही कार्य बहुत देर तक करने से या खिचने आदि से आती है। यह सब जानते हैं कि मानसिक थकान अर्थात केन्द्रीय तंत्रिकातंत्र की थकान सोने से, छुट्टी लेकर आराम करने से, कार्य के बदल देने आदि से ठीक हो जाती है। यह भी सिद्ध किया जा चुका है कि मानसिक थकान मस्तिष्क और सुषुम्ना के थकने के कारण आती है। तंत्रिका सूत्र न कभी थकते हैं और न उनके कार्य करने में किसी प्रकार की कमी आती है। वे सदैव ही अपनी सामान्य शक्ति के अनुसार, जब तक उनको रक्त मिलता रहता है, आदेशों का प्रवाह करते रहते हैं। केवल रक्त के न पहुंचने पर ही वे क्रियाशून्य, निष्क्रिय होते हैं। यहां तक देखा गया है कि उन व्यक्तियों में जिनमें पूर्ण रूप से तंत्रिकीय क्लान्ति (शून्यीकरण) आ जाती है उनमें भी तंत्रिका सूत्र उसी प्रकार से कार्यक्षमता लिये रहते हैं जिस प्रकार से सामान्य व्यक्ति में।

सोया हुआ पांव

बहुधा अनुभव होता है कि घुटने पर घुटना रखकर बैठने अथवा कूल्हे की हड्डी की बगल से बैठने से पांव सो जाता है, अर्थात सुन्न पड़ जाता है। यह तंत्रिकाओं के अन्दर स्थित कोशिकाओं के दब जाने से होता है। सामान्यतः लोग यह समझते हैं कि सो जाने वाले हिस्से में रक्त संचार न होने से ऐसा होता है। यह धारणा गलत सिद्ध हो चुकी है। किसी भाग के सो जाने से तात्पर्य उस स्थान की तंत्रिकाओं के दब जाने से होता है, न कि रक्त नलिकाओं में रक्त के बहाव के बन्द हो जाने से होता है। जब कभी पांव सो जाय उस समय यदि घुटने के पीछे अंगुली डालकर देखा जाय, तो स्पष्टः वहां एक गड्ढा-सा दिखायी देता है जो सामान्य दशा में अर्थात जब पांव सोया हुआ नहीं होता है, उपस्थित नहीं रहता है। पांव के सो जाने पर टखने के पास नब्ज को आसानी से देखा जा सकता है। इससे भी यह सिद्ध होता है कि सुन्न होने पर रक्त नलिकाओं या रक्त के प्रवाह में कोई सम्बन्ध नहीं होता है।

शरीर में कई एक स्थल जैसे घुटना, कोहनी आदि जहां तंत्रिकाएं सतह के नजदीक अर्थात उथली होती हैं, अनायास टक्कर लग जाने से एक विशेष प्रकार की झनझनाहट होती है। यह झनझनाहट भी तंत्रिकाओं के झटका खाकर शून्य हो जाने से होती है। कुहनी में जब झटका लगता है तब हाथ की अंगुलियों में सबसे अधिक झनझनाहट प्रतीत होती है, इसी प्रकार घुटने में टक्कर लगने से तलवे में सनसनाहट होती है। पांव की अपेक्षा हाथ में इस प्रतिक्रिया का सदैव अधिक अनुभव होता है। इसी अनुभव के आधार पर चिकित्सकों (डाक्टरों) ने स्थानीय भागों के सुन्न होने की विशेषता के ज्ञान के आधार पर आश्रित होकर कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रसायनों जैसे नोवोकेन, प्रोकेन आदि से भाग को सुन्न कर नश्तर आदि लगाने में सहायता ली है। दन्त चिकित्सक भी इसी ज्ञान के आधार पर दांत निकाल पाते हैं।

तंत्रिकाओं को आक्सीजन चाहिये

तंत्रिकाएं ठीक-ठीक काम करें यह इस बात पर निर्भर रहता है कि उनको आक्सीजन की पर्याप्त मात्रा मिलती है। आक्सीजन प्रत्येक भाग को रक्त से मिलता है। अतः यों कहा जा सकता है कि प्रत्येक भाग को रक्त की मात्रा ठीक मिलती रहेगी, तो तंत्रिका-तंत्र के सब ही अंश ठीक काम करते रहेंगे। यह देखा गया है कि मेंढक की तंत्रिकाएं जो प्रति सेकंड २५० उत्तेजनाओं का आदान-प्रदान करती हैं, लगभग तीन दिन का समय अपने आयतन के बराबर आक्सीजन को इस्तेमाल करने में लगाती हैं। मानव की तंत्रिकाएं मेंढक से कहीं अधिक आक्सीजन का प्रयोग करती हैं। वे अधिक से अधिक पन्द्रह मिनट तक बिना आक्सीजन के रह सकती हैं। इस समय से अधिक आक्सीजन न मिलने से उनमें पुनः क्रियाशीलता किसी भी दशा में आती नहीं है अर्थात वे पुनः जीवित नहीं की जा सकती हैं। तंत्रिकाओं के ठीक कार्य करने में विटामिन 'बी' अत्यन्त सहायक रहता है। डाक्टरों तथा वैद्यों ने यह अनेक अनुभवों द्वारा सिद्ध कर दिखाया है। अतः तंत्रिकाओं को ठीक रखने के लिए यह आवश्यक होता है कि उन्हें पर्याप्त मात्रा में आक्सीजन मिलती रहे तथा उनको झटका आदि न लगे जिससे कि वे सुन्न हो सकें। ●

अपोलो योजना : एक महत्त्वपूर्ण प्रयास

अनथक प्रयत्नों के बाद अब यह सम्भावना प्रत्यक्ष होने लगी है कि मानव चन्द्रमा पर पहुंच जायेगा। हम पाते हैं कि शताब्दियों से पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण-सीमा से मुक्ति के प्रयास होते रहे, किन्तु सैद्धान्तिक आधार की खोज न हो पायी थी।

पिछली अर्द्ध दशाब्दी में इस दिशा में उल्लेखनीय प्रगति हुई है। दुनिया के दो बड़े देश—अमरीका और रूस—सतत प्रत्यनशील रहे हैं। अब तक की अनेक परीक्षण उड़ानों में इन दोनों देशों ने वे सभी तथ्य एकत्र कर लिए हैं जो चन्द्रमा तक की समानव उड़ान को सफल बनाने में सहायक होंगे।

अमरीका की अगली योजना का नाम अपोलो योजना है। सम्भवतः यह लक्ष्य तक पहुंचने का अन्तिम चरण है।

सम्भवतः शीघ्र ही अमरीकी अपोलो योजना की पहली अन्तरिक्षयात्रा सम्पन्न होगी। इसमें छोटे आकार के सैटर्न राकेट द्वारा अपोलो अन्तरिक्षयान पृथ्वी की कक्षा में स्थापित किया जायेगा। १९६७-६८ के मध्य लगभग ६ उड़ानें की जायेंगी। हर नयी यात्रा पिछली अन्तरिक्ष यात्रा से अधिक जटिल और कठिन होगी तथा इनमें उन सभी कार्यों का अभ्यास किया जायेगा जो चन्द्रमा की वापसी यात्रा के दौरान करने पड़ेंगे।

इसी बीच सैटर्न-५ नामक चन्द्र राकेट का परीक्षण किया जायेगा। यह राकेट ७५ लाख पौंड प्रारम्भिक प्रवेश-क्षमता उत्पन्न करने में समर्थ होगा। चन्द्रयात्रा के पूर्व कुल मिलाकर ४-६ समानव सैटर्न अन्तरिक्ष यात्राएं की जायेंगी।

आकार और जटिलता की दृष्टि से अपोलो योजना जैमिनी योजना से काफी बढ़ी-चढ़ी है। जैमिनी अन्तरिक्षयान अन्तरिक्ष में स्थापित करने वाले टीटान राकेट की प्रारम्भिक प्रवेश क्षमता केवल ४,३०,००० पौंड थी, जबकि छोटे सैटर्न राकेट की प्रारम्भिक प्रवेश क्षमता १६ लाख पौंड होगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैज्ञानिक उपलब्धियां

चन्द्रमा पर प्रकाश

अमरीकी वैज्ञानिकों ने एक विशाल आकार का लेसर बनाया है जिसकी किरण-दंड उस लेसर से कहीं ज्यादा शक्तिशाली है जिसने चन्द्रमा के अन्धकारमय रुख के दो मील के क्षेत्र को प्रकाशमान रखा और जो २७ सेकंडों में धरती पर लौट आया।

कोडक लेसर ग्लास के नाम से प्रसिद्ध यह वाई-बी-२० किस्म का लेसर टंकीय कांच का बना हुआ है और इस पर मृशला नामक एक दुर्लभ तत्त्व का प्रलेप है।

एक नयी सड़क

आठ वर्ष बीत चुके हैं किन्तु अभी तक २१० गज की परीक्षण-सड़क जो पश्चिमी जरमनी के वियेंसवेदन नगर की ट्रंक रोड पर है, जरा-सी भी टूटी-फूटी नहीं है। इसका कारण यह है कि इसकी सतह रबर की बनी हुई है। पास ही में बनी वजरी और तारकोल की सड़क खराब हो गयी लेकिन यह रबर की सड़क ज्यों की त्यों है।

इस परीक्षण से यह आशा बंधती है कि भविष्य में इस तरह की सड़कें काफी लोकप्रिय होंगी।

एक सूक्ष्म विद्युत् कण

एक सूक्ष्म विद्युत् कण ने जो आकार में पिन के सिरे से भी छोटा है, अमरीका में एक ऐसी क्रान्ति को जन्म दिया है जिसकी ओर अब तक कम ही लोग आकर्षित हुए हैं।

रेत से तैयार किये गये इस विद्युत् कण में एक सम्पूर्ण विद्युत् सरकिट का समावेश होता है। यह लगभग वेही कार्य करता है जो ट्यूब, ट्रांजिस्टर, रिसिस्टर तथा इसी प्रकार के अन्य विद्युत् प्रवाहक उपकरणों द्वारा सम्पन्न किये जाते रहे हैं।

विद्युत् यन्त्रों में इसका उपयोग करने के फलस्वरूप गति, विश्वसनीयता और उपयोगिता के सम्बन्ध में नये सिद्धान्तों का जन्म हो रहा है। इन्हें मोनोलिथिक इंटिगरेटेड सरकिटों का नाम दिया गया है तथा जिस तकनीकी विद्या से इनका विकास हुआ है उसे माइक्रो इलेक्ट्रिक विज्ञान कहते हैं।

इन कणों का उपयोग कर अत्यन्त संवेदनशील विद्युदणु गणना यन्त्रों पर होने वाले समय में तथा उनके आकार में इतनी कमी की जा सकती है कि छोटे-छोटे उद्योगों और यहां तक कि घरों में भी इनका उपयोग सम्भव हो सकता है।

परीक्षण रेलगाड़ी : नयी सम्भावनाएं

एक रेलगाड़ी ने जिसमें ड्राइवर के डिब्बे की खिड़कियां वन्द थीं, बिना किसी दुर्घटना के हेम्बर्ग की भूमिगत रेलवे का सफर तय किया। हालांकि उसमें बैठा ड्राइवर कुछ भी नहीं देख सकता था, लेकिन फिर भी उसने गाड़ी रोकना, गाड़ी की गति को तेज करना तथा मोड़ों पर धीरे से ब्रेक लगाना आदि कार्य सफलतापूर्वक सम्पन्न किये।

छह डिब्बों वाली इस प्रदर्शन रेलगाड़ी का नियन्त्रण विद्युत् लहरों द्वारा किया गया। सभी आदेश विद्युत् द्वारा ड्राइवर तक पहुंचाये गये। वह उपकरण के पेनल पर हमेशा अपनी नजर रखे हुए था। इसमें यह व्यवस्था थी कि मशीनी खराबी आ जाने पर गाड़ी अपने-आप रुक जाती थी।

वैज्ञानिकों ने आशा व्यक्त की है कि यदि यह नयी प्रणाली जारी हो जाती है, तो रेल दुर्घटनाएं समाप्त हो जायेंगी और रेलें प्रति ६० सेंकंड के बाद चलायी जा सकेंगी। इससे यात्रियों को न तो अधिक समय तक प्रतीक्षा करना पड़ेगा और न उन्हें बार-बार टाइम टेबिल देखने की परेशानी होगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

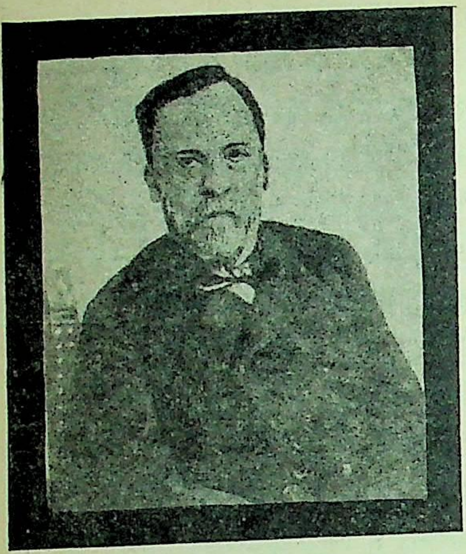

लुई पाश्चर

संघर्ष से सफलता की ओर

डा. हर्ष प्रियदर्शी

प्रयोगशाला की दीवारों में जब एकाकीपन का सन्नाटा खिंच गया, तो लुई ने शुरू किया अपना अद्भुत प्रयोग—प्रयोग जो लियविग के लिए मृत्युदायी बना। लुई ने पहले कुछ स्वच्छ फ्लास्क लिये और उनमें आसुत जल भरा, और तब इन आसुत जल-भरे फ्लास्कों में उसने नपी-तुली मात्रा में स्वच्छ चीनी छोड़ दी। और तब इस शर्करा घोल को उसने अपने अमोनिया-लवण में मिला दिया—वस्तुतः लुई ने जिस वस्तु का उपयोग प्रयोग में किया था वह वास्तव में अमोनिया टारट्रेट थी। अब इतनी तैयारी पूरी कर चुकने पर उसने इन फ्लास्कों में जिनमें अल्बुमिनरहित घोल विद्यमान था, एक-एक बूंद यीस्ट छोड़ दिया–उगने और प्रजनन करने के लिए। फ्लास्कों में यीस्ट की बूदें छोड़ चुकने पर उसने प्रत्येक फ्लास्क को अच्छी तरह से बन्द किया और उन्हें अपनी ताप संचालित भट्ठी में रख दिया। प्रयोग पूरा कर चुकने पर वह व्यग्रमन से सिर्फ यह सोचता हुआ कि क्या इस नये घोल में यीस्ट के प्राणी कणों का प्रजनन होगा अथवा नहीं, वह अपने घर लौट आया।

यहां हैं वे प्राणी कण !

लुई जब घर पहुंचा तब तक रात का सयापा पेरिस पर घिर चुका था। और रात के इसी भयावने सन्नाटे में उसने अपनी प्रिया को वह सब कुछ बताया जो आज दिन उसके साथ घटित हुआ था, और अपनी व्यग्रता भी उसने बयान की। उसकी पत्नी उसके एक-एक तर्क और तथ्य सुनती रही और साथ-साथ वह लुई को धीरज देती रही कि विजयश्री निश्चित ही उसके साथ होगी और निस्सन्देह इस नये प्रयोग में उसे सफलता प्राप्त होगी। पत्नी की कोमल सान्त्वना के बावजूद भी पूरी रात लुई सो न सका। वह बिस्तरे पर अधीरतापूर्ण प्रतीक्षा करता रहा सुबह की। अन्त में सुबह हुई और लुई की अधीर-व्यग्र रात्रि का अन्त हुआ। लुई सीधा भागा अपनी प्रयोगशाला की ओर जहां उसका भविष्य और लियविग की मृत्यु उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। प्रयोगशाला में पहुंचने पर लुई ने अधीरतापूर्ण फ्लास्कों को ताप संचालित भट्ठी से बाहर निकाला और एक फ्लास्क खोलकर उसके घोल की एक बूंद अपने अणुवीक्षण यंत्र के दायरे में रख दी। क्षण दो क्षण लुई अणुवीक्षण यंत्र पर झुका हुआ देखता रहा और तब उसके मुंह से हर्षोल्लास के शब्द फूट पड़े, 'यहां हैं वे प्राणी कण—हजार-हजार दंडाकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राणीकण—यीस्ट···अनगिनत यीस्ट—सभी लगभग नवजात हैं और साथ में कुछ पुराने प्राणीकण भी हैं जिन्हें मैंने कल फ्लास्क में रक्षित किया था प्रजनन के लिए।' इतना देख लेने पर एक बार लुई के मन में तीव्र आकांक्षा उठी कि वह अभी बाहर जाय और चीख-चीख-कर सारी दुनिया में यह बता दे कि लियबिग मूर्ख है—लियबिग एक मिथ्यावोध में जीवित है, किन्तु लुई बाहर गया नहीं, वरन् उसने अपने आवेश को काबू में किया और उन सभी फ्लास्कों के खाद्य घोलों का निरीक्षण किया। प्रत्येक फ्लास्क के निरीक्षण पर उसे लाख-लाख नवजात यीस्ट प्राणीकणों की प्राप्ति हुई। अपने इस निरीक्षण को उसने अपनी नोटबुक में नोट किया तदुपरान्त एक फ्लास्क से थोड़ा एक रिटार्ट में डालकर उसका निरीक्षण किया। निरीक्षण करने पर लुई को रिटार्ट में अलकोहल की बूंदें प्राप्त हुई। अलकोहल की इस उपलब्धि पर एक बार पुनः लुई धीरे-धीरे गुनगुनाया, 'लियबिग नितान्त गलत है—किण्वन के लिए अल्बुमिन एकदम आवश्यक नहीं है, शर्करा का किण्वन तो यीस्ट की वृद्धि से सम्पन्न होता है।' प्रयोग और परीक्षण के समापन पर लुई का मन भर आया, हर्ष के अतिरेक में उसकी पलकों में आंसू के कतरे भर गये और तब वह अपनी इन्हीं विजयी आंखों से अपने विजय का समाचार सुनाने अपनी प्रिया को लौट गया···जहां अबोध शिशु उसकी प्रतीक्षा करते-करते थककर सो गये थे और उसकी महान् आस्थावान पत्नी घर की देहरी पर बैठी हुई थी, प्रतीक्षा में।

वह पुराने प्रयोगों को सत्य का जामा पहनाने में लगा रहा

लुई प्रयोगशाला के दायरे से घर जरूर लौट आया, किन्तु उसका मन प्रयोगशाला की चहारदीवारी में ही भटकता रहा, उसकी आंखों में दंडाकार प्राणीकण ही नाचते रहे। तमाम रात उसके स्वप्नों में वे लाख-लाख दंडाकार प्राणीकण नर्तन करते रहे और भोर होते ही वह पुनः अपनी प्रयोगशाला में चला गया जहां हफ्तों वह अपने पुराने प्रयोग को निश्चित् सत्य का जामा पहनाने के लिए कार्य करता रहा। लुई को प्रत्येक बार यही परिणाम मिला कि यीस्ट द्वारा ही शर्करा की किण्वन प्रक्रिया सम्पन्न होती है तथा फल-रूप में अलकोहल का सृजन होता है। लुई को अपने प्रयोग में निस्सन्देह सफलता प्राप्त हो गयी किन्तु इसके बावजूद उसने अपने इस महत्त्वपूर्ण परिणामफल को घोषित नहीं किया। वह निरन्तर इन दंडाकार प्राणियों पर कार्य करता रहा, क्योंकि अब उसकी आकांक्षा इन दंडाकार प्राणीकणों का पूर्णरूपेण अध्ययन करने की बन गयी थी। अपने इस अध्ययन कार्य में वह प्रतिदिन घंटों अणुवीक्षण यन्त्र के माध्यम से इन दंडाकार प्राणीकणों का अध्ययन करता रहा और अपने इसी अध्ययन के पीछे लुई पाश्चर को अपना शरीर, स्वास्थ्य सभी कुछ खो देना पड़ा। यीस्ट-विषयक उसका यह अध्ययन कार्य जून से सितम्बर तक निरन्तर चलता रहा। लुई ने अपनी आत्मकथा में अपने इन दिनों के विषय में लिखा है: 'उस क्षण से अणुवीक्षण यन्त्र के दायरे से मैंने अपनी दृष्टि नहीं हटायी।' अध्ययन के इन्हीं दिनों में यीस्ट विषयक एक और महत्त्वपूर्ण तथ्य का पता लगा लिया था कि यीस्ट कब तक, किस काल तक शर्करा को किण्वन द्वारा अलकोहल में परिवर्तित करते रह सकते हैं। इतना सब कुछ समाप्त कर लेने पर वह यूरोप की वैज्ञानिक दुनिया में एक बार पुनः चीख पड़ा, 'अपने यीस्ट (दंडाकार प्राणीकणों) को अधिक से अधिक शर्करा दो और ये यीस्ट कण तीन अथवा अधिक महीनों तक अलकोहल का उत्पादन न रुकने देंगे।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लुई के अन्दर का वैज्ञानिक मर गया

और इन्हीं दिनों उसके अन्दर का वैज्ञानिक पल भर को मृत्यु को प्राप्त हो गया, और उसकी जगह पर जन्म हुआ एक प्रदर्शनकारी का । लुई के इस नये प्रदर्शनकारी व्यक्तित्व ने सारी दुनिया को यह महान् तथ्य बतलाने का निश्चय किया कि फ्रांस की हजारों गैलन शैम्पेन और जरमनी की अथाह बीयर राशि का जो वस्तुतः लाखों गैलन होती है निर्माण मानवों द्वारा नहीं वरन् इन अणुवीक्षणीय लाख-लाख दंडाकार प्राणीकणों द्वारा सम्पन्न होता है । और अपने इसी विचार को लेकर उसने तमाम वैज्ञानिक लेख लिखे, तमाम व्याख्यान दिये और तर्कों और तमाम प्रमाणों को लियबिग के ऊपर फेंक दिये, जिनके बोझ से रसायन के मसीहा लियबिग की प्रतिभा की मृत्यु हो गयी ।

व्याख्यान और लेखों के इन्हीं शोर-शराबे वाले दिनों में नदी साइन के तट पर, वैज्ञानिक लोकतन्त्र में जो पेरिस में बसा था, एक चक्रवात उठ खड़ा हुआ जिसकी भयंकर लहरों की गूंज में सिर्फ एक शब्द गूंज-गूंज उठने लगा और वह शब्द था लुई···लुई···लुई···। हुआ यह कि पेरिस की वैज्ञानिक अकादमी जिसने एक दिन लुई को अपना सदस्य घोषित करने में अपमान माना था, उसी अकादमी ने लुई को क्रिया-विज्ञान का सबसे बड़ा पुरस्कार दिया ।

पुरस्कार घोषणा के दूसरे दिन रात्रि को उत्सव में लुई के प्रथम और पुराने गुरु ड्यूमा ने लुई का आदर किया और उसे युग की सबसे महान् प्रतिभा घोषित की । ये वही प्रोफेसर ड्यूमा थे, एक दिन किशोरावस्था में रसायन पर जिनका व्याख्यान सुनकर लुई ने रसायनशास्त्री बनने का निश्चय किया था । इस अवसर पर लुई हर्ष और गर्व के अतिरेक में डूब गया था और इसी अतिरेक में अपने प्रोफेसर ड्यूमा को धन्यवाद देते हुए उसने कहा था, 'महोदय···आपको अभी कुछ दिन पूर्व ही अकादमी ने दूसरे महत्त्वपूर्ण आविष्कारों पर पुरस्कृत किया था, किन्तु आज को इस शाम को हर जन यह महसूस कर रहा है कि आज आपसे अधिक गौरवपूर्ण और महान् शिक्षक कोई दूसरा नहीं है ।'

लुई सम्मान और यश के सागर में डूबने लगा

लुई सम्मान और यश के सागर में डूबने लगा लेकिन लुई के प्रतिद्वन्दी लुई के इस यश और विजय से अन्दर ही अन्दर धधकने लगे। चारों ओर उसके शत्रुओं ने उसका प्रतिरोध शुरू कर दिया किन्तु वह एक-एक से संघर्ष करता गया और उसने तमाम शत्रुओं को एक दिन समाप्त कर दिया ।

(क्रमशः)

अन्तरिक्षयान से टकराने वाले उल्कापिंड

तीन अमरीकी अन्तरिक्षयानों के विशाल पंखों में हुए १,१०० से अधिक छोटे छिद्रों से वैज्ञानिकों को उन उल्कापिंडों के विषय में महत्त्वपूर्ण जानकारी मिली है जो पृथ्वी के समीप अन्तरिक्ष में उड़ते रहते हैं ।

ये उल्कापिंड ऐसे टुकड़े हैं जो आकार में धूल के कणों से लेकर बड़े पत्थरों के समान होते हैं। इनकी संख्या, आकार तथा छेदन शक्ति भावी अन्तरिक्षयानों के डिजाइनों—विशेष रूप से प्रोपेलेंट टैंकों और यान चालकों की केबिनों आदि के लिए महत्त्वपूर्ण है जिनमें छिद्र हो जाने पर विनाशकारी परिणाम निकल सकते हैं ।

भावी अन्तरिक्षयानों के बड़े आकार और कार्यक्रमों की भावी अवधि के कारण अन्तरिक्ष में उल्कापातों—जैसे खतरों का अधिक सामना करना पड़ेगा और इससे उनके सम्बन्ध में मिलने वाली जानकारी का और महत्त्व बढ़ जायेगा ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान-क्लब

प्रिय बच्चो,

इस बार अनेक सदस्यों ने यह पूछा है कि पढ़ना-लिखना मुश्किल होते हुए भी कैसे आसान लग सकता है। यह बात बहुत उलझी हुई है। कम से कम इसका समाधान तो कठिन है ही।

तुम स्कूल में जो कुछ पढ़ते हो, उसके विषय में क्या सोचते हो? सम्भव है, तुम कुछ न सोचते होगे और योंही पढ़ते जाते होगे, या यह ध्येय होगा कि तुम्हें परीक्षाएं पास करनी हैं, या यह भी सोचते होंगे कि यदि नहीं पढ़ोगे तो मार खाओगे।

वास्तव में तुम्हें सोचना कुछ और है। तुम व्यक्तियों के समाज में रहते हो। पहले तुम एक व्यक्ति हो फिर कुछ और। तुमसे कुछ लोग उम्र में तथा दरजे में बड़े हैं। तुम देखोगे कि उन पर कुछ जिम्मेदारियां हैं। कल जब तुम बड़े हो जाओगे, तो तुम्हें भी वे ही जिम्मेदारियां निभानी पड़ेंगी।

पढ़ने-लिखने का मतलब है सुसंस्कृत होना। सुसंस्कृत होने का अर्थ है जिम्मेदारियों को निभाने में समर्थवान बनना। तुम अगर एक सिरे से सोचना शुरू करो, तो काफी बातें साफ हो जायेंगी।

तुम पढ़ते-लिखते इसलिए हो कि तुम्हें सीखना है। यह सीखना कभी खत्म नहीं होता। सीखने की क्रिया से तुम भागना चाहो, तो यह सम्भव नहीं होगा। लेकिन यदि तुम्हारी तबीयत यह होती है कि सीखने से भाग जाओ, तो वास्तव में तुममें अनुशासन की कमी है।

जरा सोचो कि दुनिया में जितना कुछ ज्ञान-विज्ञान है, वह सब तुम जानना-सीखना चाहो और इस विषय पर गम्भीरता से सोचो, तो पाओगे कि यह जीवन बहुत थोड़ा है। फिर भी यदि तुम अनुशासन में बंधे रहे, तो बहुत कुछ सीख लोगे।

पर यह सीखना, पढ़ना-लिखना आसान कैसे लग सकता है? वास्तव में व्यक्ति अपनी रुचि का गुलाम होता है। वह जिस काम में दिलचस्पी लेता है, उसे कर डालता है। मान लो तुम जीव-विज्ञान पढ़ रहे हो। यदि इस विषय में तुम्हारी दिलस्पी नहीं है, तो तुम इसे बहुत कठिन पाओगे। कभी-कभी किसी विषय में हो सकता है तुम्हारी रुचि न पैदा होती हो, लेकिन यह सोचकर कि ज्ञान के प्रति तुममें रुचि है, और यह विषय जिसमें तुम्हारी रुचि नहीं है, ज्ञान का अक्षय भंडार है, तुम उसमें दिलचस्पी लेने लग सकते हो। पर सब कुछ करना तुम्हें ही है। सोचना भी तुम्हें ही है, पढ़ना-लिखना भी तुम्हें ही है।

इधर तुम विज्ञान-क्लब के स्तम्भों में कम ही रुचि लेते हो, पर एक सदस्या अपनी रुचि से वैज्ञानिक कहानी लिखने में समर्थ हो सकी।

कोई भी काम कठिन मत समझो। हर कठिन काम में अपनी रुचि पैदा करो। थोड़े दिनों में देखोगे कि तुम सब कुछ कर सकते हो।

सस्नेह तुम्हारी

कृष्णा दीदी

प्रतियोगिता संख्या ७९ के विजेता

प्रथम पुरस्कार

मनोहरलाल (१८८६८) वाराणसी।

द्वितीय पुरस्कार

सोमेश (१८८०२) कलकत्ता।

तृतीय पुरस्कार

रघुवीर (१८८६६) पटना।

कूपन प्रतियोगिता संख्या ८०

नाम ....

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान क्लब के नये सदस्य

महर्षि लालाधर
(स.सं. १८४२४)

सन्तोषकुमार
(स.सं. १८५०५)

१२६११ गोविन्दनारायन (१६) मोरार, १२ वासुदेव (१६) पटना, १३ विनोदकुमार (१६) सिरोंज, १४ किशनचन्द (१६) बरेली, १५ महेशचन्द्र (१७) बदायूं, १६ सुरेन्द्रपालसिंह (१३) इटारसी, १७ राजीव (१६) लखनऊ, १८ राकेश (१४) लखनऊ, १९ अमरेन्द्र (१४) सूरजपुरा, २० इन्द्रजीत (१६) आगरा, २१ प्रतापबाबू (१७) मुरैना, २२ हरीशंकरसिंह (१६) आगरा, २३ सज्जनकुमार (१४) सरैयागंज, २४ जगदीशकुमार (१७) संगरूर, २५ महेन्द्रकुमार (१६) टीकमगढ़, २६ अविनाशचन्द्र (४०) नयी दिल्ली, २७ अजीतकुमार (१७) मुजफ्फरपुर, २८ जयप्रकाश (१८) रांची, २९ विनोदप्रसाद (२०) भागलपुर, ३० ज्ञानसिंह (११) लखीमपुर, ३१ ब्रजेशकुमार (१२) बालाघाट, ३२ प्रकाशनारायण (१७) कानपुर, ३३ पाडुंरंग एम. (१९) विदिशा, ३४ पुरुषोत्तमदास (१६) पटना, ३५ ईश्वरचन्द्र (१५) पडरोना, ३६ उषा (१४) कानपुर, ३७ सत्येन्द्रविष्णु (१२) कानपुर, ३८ मीरा (१३) कानपुर, ३९ आशा (१८) कानपुर, ४० महादेव (१४) इन्दौर, ४१ गोपालकृष्ण नागेन्द्रराव (१४) इन्दौर, ४२ अशोककुमार (१७) जयपुर, ४३ सुनीलकुमार (१८) जयपुर, ४४ माधुरबली (१७) हरदोई, ४५ रमेशकुमार (१६) टीकमगढ़, ४६ खेमचन्द (१६) मुरैना, ४७ सतीशचन्द्र (१६) सबलगढ़, ४८ सतीशचन्द्र (१७) आगरा, ४९ अमितकुमार (१६) मथुरा, ५० सत्यपाल (१९) सहारनपुर, ५१ सुरेन्द्रप्रताप (१६) मथुरा, ५२ पुष्पाकुमारी (१८) इन्दौर, ५३ रघुनन्दन (१५) गंगापुर, ५४ आनन्द ब्रह्मकुमार (१६) बाराणसी, ५५ टामस (१६) मुरादाबाद, ५६ अशोककुमार (१७) मंदसौर, ५७ देवदास (१७) रायपुर, ५८ सुधीरकुमार (१९) अहमदाबाद, ५९ योगेन्द्रप्रसाद (१४) मुजफ्फरपुर, ६० के. एस. अजमानी (२२) इन्दौर, ६१ हितनाथ (१६) शाहाबाद, ६२ स्वरामकुमार (१७) बालाघाट, ६३ शामलाल (१६) करनाल, ६४ चाननमल (१७) संगरिया, ६५ स्वप्नकुमार (१६) हजारीबाग, ६६ राघवेन्द्रसिंह (१८) दुर्ग, ६७ उमेशचन्द्र (१५) मुरादाबाद, ६८ चन्द्रप्रकाश (१८) हजारीबाग, ६९ सज्जनकुमार (१६) बिलासपुर, ७० रामकुमार (१३) सागर, ७१ अरविन्दकुमार (१२) सागर, ७२ सरोज (१५) सागर, ७३ सत्येन्द्रकुमार (१३) मुरादाबाद, ७४ अमरनाथ (१७) हिसार, ७५ राधाविनोद (१८) अल्मोड़ा, ७६ देवीप्रसाद (१५) छिन्दवाड़ा, ७७ ज्ञानचन्द्र (१८) उदयपुर, ७८ बुधमल (१७) मुरैना, ७९ अखिलकुमार (१४) रांची, ८० नरेन्द्रकुमार (१७) मुजफ्फरनगर, ८१ सरोज (१७) गोरखपुर, ८२ विन्देश्वरीप्रसाद (१८) मुड़वारा, ८३ नन्दलाल (१६) कांचरापाड़ा, ८४ अशोककुमार (१७) कांचरापाड़ा, ८५ अरविन्दकुमार (१८) चितौड़गढ़, ८६ नंदकिशोर (१७) सुजानगढ़, ८७ हेमेन्द्रकुमार (१६) मुरैना, ८८ विनोदबिहारीलाल (१७) मैनपुरी, ८९ जयप्रकाश (१६) शाहपुरा, ९० विजयकुमार (१८) कलकत्ता, ९१ विजयकुमार (१६) पटना, ९२ राजेश्वरी (२०) गाजीपुर, ९३ श्यामसुन्दर (१९) सुजानगढ़, ९४ दीपककुमार (१८) जगदलपुर, ९५ मदनलाल (१५) सुजानगढ़, ९६ प्रद्युम्नकुमार (१७) बाराबंकी, ९७ मलयमारुति (१६) भागलपुर, ९८ विनोदकुमार (१६) मुजफ्फरपुर।

विजयबहादुरसिंह
(स.सं. १८४३३)

उमेशचन्द
(स.सं. १८५१२)

महेशप्रसाद
(स.सं. १८४९७)

रामस्वरूपलाल
(स.सं. १८५७१)

सन्तोषकुमारसिंह
(स.सं. १८५०२)

सुरेशचन्द्र
(स.सं. १८५८६)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ८१

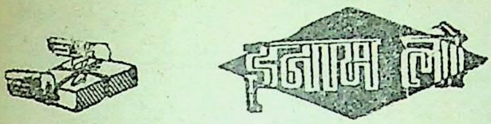

प्रथम पुरस्कार	२५ रु. की पुस्तकें
द्वितीय पुरस्कार	२० रु. की पुस्तकें
तृतीय पुरस्कार	१५ रु. की पुस्तकें

अन्तिम तिथि : ३१ जनवरी

इस प्रतियोगिता में केवल विज्ञान क्लब के सदस्य भाग ले सकते हैं। प्रतियोगिता में भाग लेने का कोई शुल्क नहीं है। नीचे दिये हुए प्रश्नों के उत्तर अलग कागज पर स्याही से साफ-साफ लिखकर पृष्ठ ५३ पर छपे कूपन के साथ लिफाफे में बन्दकर निम्नलिखित पते पर भेज दो—

कृष्णा दीदी, संचालिका, विज्ञान क्लब, विज्ञान-लोक, आगरा-३

लिफाफे पर 'विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ८१ के उत्तर' लिखना आवश्यक है। उत्तर ३१ जनवरी तक उपरोक्त पते पर अवश्य पहुंच जाने चाहिये। बाद में आये उत्तरों पर विचार नहीं किया जायगा।

विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ८१ के प्रश्न

१. यह कैसे मालूम किया जा सकता है कि चोट लगने के बाद जो रक्तस्राव हो रहा है, वह धमनी से हो रहा है या शिरा से ?

२. प्रेशर कुकर में खाना जल्दी क्यों बन जाता है ?

३. क्या अलकोहल में बर्फ का टुकड़ा डूब जाता है ? क्यों ?

४. गरमियों में आमतौर से घड़ियां सुस्त क्यों चलने लगती हैं ?

५. बालू पर चलना क्यों कठिन है ?

६. हीरा रात में क्यों चमकता है ?

७. अवशेष (fossil) किसे कहते हैं ?

८. सामान्य स्वास्थ्य के एक व्यक्ति में उसके वजन की तुलना में रक्त का प्रतिशत क्या होता है ?

९. हवा भरते-भरते साइकिल का पम्प गरम क्यों हो जाता है ?

१०. प्रायः फूलों का रंग चमकीला क्यों होता है ?

विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ७९ के प्रश्नों के उत्तर

१. कलकत्ता में।

२. पश्चिमी जरमनी में।

३. पेट के अन्दर पेप्सिन और हाइड्रोक्लोरिक एसिड की प्रक्रिया से।

४. अमरीका में।

५. पृथ्वी की ओर अत्यन्त तीव्रता से।

६. एक्स-किरणें हड्डियों को नहीं भेदतीं।

७. किल्सटन।

८. अमरीकी वैज्ञानिकों ने।

९. १९१४ में ब्रिटेन और फ्रांस के सहयोग से।

१०. जेटयान सभी हवाई अड्डों पर नहीं उतर सकते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

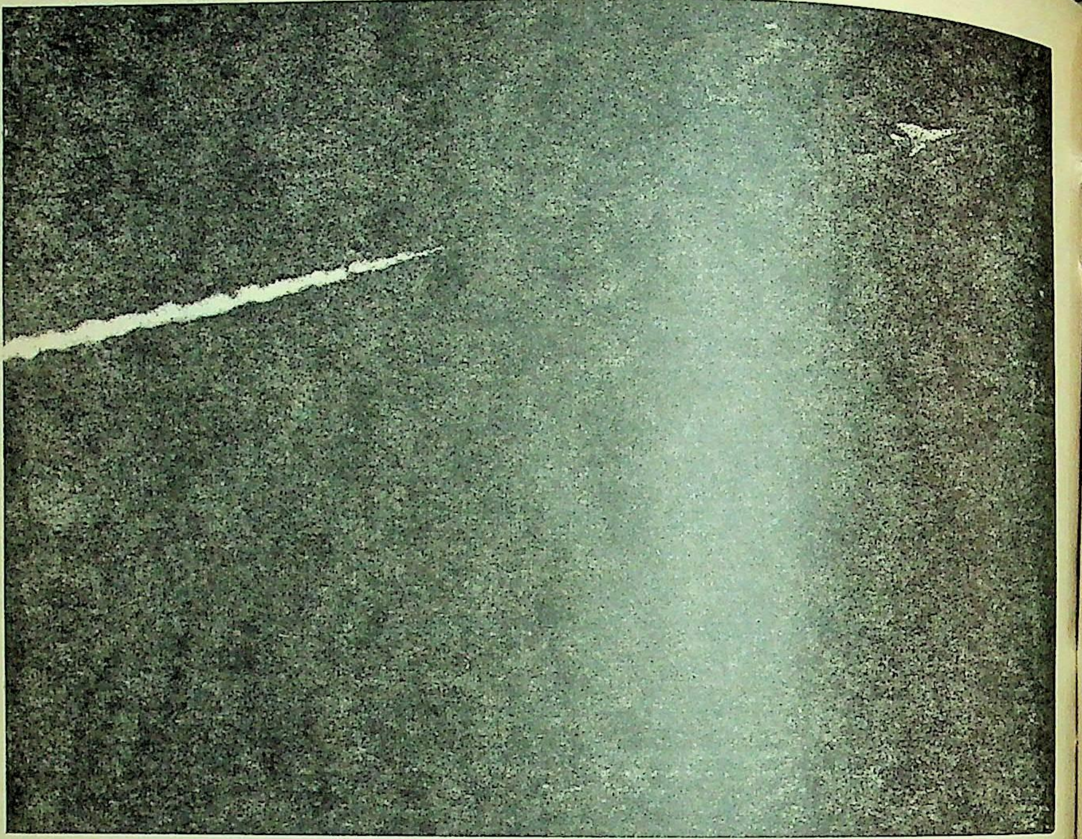

तुम्हारी कलम से

वह रहस्यमय जेटयान

अनीता सहगल (स. सं. १२७३९)

लोग बड़ी उत्सुकता से आकाश की ओर आंखें उठा लेते थे। रोज इसी समय एक जेटयान दक्षिण की ओर जाता था। वह आंखों से ओझल हो जाता था और आकाश में धुएं की एक लकीर बची रह जाती थी।

इस जेटयान के बारे में लोगों के मन में अलग-अलग विचार थे। कोई कहता कि यह मुसाफिरों को लेकर किसी पश्चिमी देश की ओर जा रहा होगा और कोई यह कि मुमकिन है, इतनी ऊंचाई पर दुश्मन नक्शे ले रहा हो। और अब तो यह हो गया था कि निश्चित समय पर लोग खुद ब खुद आकाश की ओर आंखें उठाकर जेटयान के आने की प्रतीक्षा करने लगते थे। जेटयान आता और चला जाता। धुएं की एक लकीर बची रहती।

और शायद लोगों को यह बात नहीं मालूम थी कि उनके मन में इस जेटयान के प्रति जितनी उत्सुकता थी, उससे कहीं ज्यादा उत्सुकता नाथूराम नामक एक व्यक्ति के मन में थी। पर वह किसी मकान की छत या किसी मैदान से इस जेटयान को नहीं देखा करता था। वह शहर से दूर, एक टीले पर खड़ा रहता और जेटयान को देखता रहता।

वास्तव में यह जेटयान अनोखा था। डाक्टर अब्दुल्ला रोगियों पर परीक्षण कर रहे थे। यह जेटयान एक किस्म का उड़ता हुआ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अस्पताल था। इसमें दमा, तपेदिक, कैंसर और न जाने किस-किस बीमारी के रोगी थे। डाक्टर अब्दुल्ला का खयाल था कि गति और वायुमंडल के दबाव का किसी भी रोग की वृद्धि या उसकी रोकथाम पर असर पड़ता है। पहले नाथूराम उनकी योजनाओं में शामिल था। जब अपनी अरजी मंजूर हो जाने पर डाक्टर अब्दुल्ला ने इस जेटयान को खरीदा था, तो नाथूराम ही उसे उड़ाकर यहां तक लाया था, इसके अलावा वह अभी कुछ दिनों पहले तक इस जेटयान को उड़ाता था, लेकिन डाक्टर अब्दुल्ला ने उस पर यह शक किया कि शायद उनके परीक्षण को वह लोगों में अभी से ही फैला रहा है, क्योंकि जिन सिद्धान्तों पर डाक्टर अब्दुल्ला काम कर रहे थे, उनके एक अंश की अकस्मात् एक दूसरे वैज्ञानिक ने घोषणा कर दी थी। डाक्टर अब्दुल्ला का खयाल था कि इस तरह उनकी मेहनत बेकार हो जायेगी और नाम किसी दूसरे का होगा। यही कारण था कि उन्होंने नाथूराम को नौकरी से हटा दिया था।

लेकिन नाथूराम एक वफादार नौकर था और वह डाक्टर अब्दुल्ला की विवशता पहचानता था। फिर भी वह नौकरी से चुपके-से हट गया। लेकिन इस जेट के प्रति जिसे और लोग रहस्यमय समझते थे, उसके मन में मोह होना स्वाभाविक था।

नाथूराम का विश्वास था कि डाक्टर अब्दुल्ला की सफलता निश्चित है। गति और वायुचाप-सम्बन्धी जो प्रयोग वे कर रहे थे, उसमें नवीनता तो थी ही, साथ ही उनका आधार वैज्ञानिक भी था। किसी भी रोग में कोषों के विभाजन होने तथा बनने में गति का विशेष हाथ होता है। वायुमंडल के निश्चित स्तरों पर और निश्चित गति के अन्तर्गत कोषों पर प्रभाव अवश्य पड़ता है। यह एक ऐसा सिद्धान्त था जिसने उन्हें प्रयोग के लिए प्रोत्साहित किया था और अब वे कई देशों की मदद से इसे सम्पन्न कर रहे थे।

उन्होंने कुछ ही दिनों में देखा था कि विभिन्न रोगियों पर अलग-अलग प्रतिक्रियाएं होने लगी हैं। कैंसर का रोगी कुछ ठीक होने लगा है, पर तपेदिक के मरीज का रक्तचाप गिर गया है। वे रोज अपने प्रयोग में थोड़ा संशोधन करते जाते।

जब नाथूराम नौकरी से निकाला गया था, उस समय तक डाक्टर अब्दुल्ला को आधी सफलता मिल चुकी थी। नाथूराम एक ऐसा व्यक्ति था जिसे उन सिद्धान्तों की पूरी जानकारी थी जिन पर डाक्टर अब्दुल्ला प्रयोग कर रहे थे। वह समय-समय पर उन्हें सलाह भी दिया करता था, जिसे वे मान लेते थे।

यही नाथूराम को अफसोस था कि अब डाक्टर अब्दुल्ला को कौन सलाह दे पायेगा। कहीं ऐसा तो नहीं कि उसकी कुछ कीमती सलाहों के अभाव में डाक्टर अब्दुल्ला असफल रहें। पर तुरन्त ही वह सोचता कि उसे अपनी जानकारी का घमंड नहीं होना चाहिये और डाक्टर अब्दुल्ला की तुलना में वह एक मामूली आदमी है—निहायत साधारण पायलट, जिसका काम है जहाज उड़ाना। उसने इस बात पर और अधिक सोचना मुनासिब नहीं समझा कि डाक्टर अब्दुल्ला सफल रहेंगे या असफल, पर वह यह जरूर सोचता रहा कि क्या डाक्टर अब्दुल्ला के मन में यह बात गहराई तक पहुंची हुई है कि उसने ही उनके कुछ सिद्धान्तों को उस वैज्ञानिक तक पहुंचाया है। क्या यह मुमकिन नहीं है कि एक ही समय में दो आदमी एक ही बात पर सोचें और एक ही निष्कर्ष पर पहुंचे?

और दिन इसी तरह बीतते रहे। नाथूराम के मन में इस जेटयान के प्रति विशेष उत्सुकता नहीं थी। लेकिन दूसरे लोग जेटयान को कम या अधिक रहस्यपूर्ण समझने लगे थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक अजीब जेटयान जो चला जाता था और धुएं की लकीर छोड़ जाता था।

हमेशा की तरह उस शाम भी नाथूराम ऊंचे टीले पर खड़ा होकर जेटयान के आने की प्रतीक्षा करने लगा। नियत समय पर जेटयान आया। नाथूराम की आंखें उसे आकाश के फैलाव में तलाशने लगीं। वह दीखा। लेकिन अचानक ही जेटयान की ध्वनि समाप्त हो गयी। धुएं की लकीर टूट गयी। नाथूराम के मन में एक आशंका भर गयी। वह सोचने लगा, शायद कुछ अनर्थ हो सकता है।

तभी जेटयान चक्कर खाने लगा। वह ऊंचाई से तेजी में नीचे आ रहा था। और फिर देखते ही देखते वह पूर्व में एक ढलान की ओर गिर गया। उसके गिरते ही जोरों का धमाका हुआ और आग लग गयी। वह जगह मुश्किल से वहां से पांच सौ गज की दूरी पर थी जहां नाथूराम खड़ा था। वह जलते हुए जेटयान के पास दौड़ा चला गया। सब कुछ अस्तव्यस्त, जलता हुआ! लाशें ही लाशें! रोगियों की लाशें! और एक तरफ डाक्टर अब्दुल्ला की लाश! लपटों के प्रकाश में उसने देखा, पास ही एक डायरी पड़ी है। डाक्टर अब्दुल्ला की जलती लाश के पास से उसने बढ़कर डायरी उठा ली। तभी उसे फायर ब्रिगेड की गाड़ियों की घंटी सुनायी पड़ी। वह अंधेरे में सरक आया।

करीब डेढ़ घंटे के बाद नाथूराम शहर के एक खूबसूरत रेस्तरां में मौजूद था। उसने डायरी में आज की तारीख देखी। पृष्ठ सादा था। उसने पृष्ठ पलटा। पिछली तारीख वाले पृष्ठ पर लिखा था: 'मैं अपने प्रयोग में पूरी तरह सफल हो चुका हूं। कई रोगियों का इलाज कर चुका हूं। लेकिन नाथूराम की जुदाई अखरती है। वह वफादार था। मैं उसे मना लूंगा।'

नाथूराम की आंखों में पानी आ गया। ●

यहां से काटिए

विज्ञान क्लब सदस्यता, विज्ञान-लोक

कृष्णा दीदी,

जन्म-दिन ______________________ आयु ______________________

नाम ______________________

घर का पता ______________________

____

____

स्कूल का नाम ______________________

शिक्षा ______________________ रुचि ______________________

यहां से काटिए

यहां से काटिए

यहां से काटिए

जगदीश मेहरा द्वारा मेहरा आफसेट प्रेस, आगरा में मुद्रित एवं मेहरा न्यूजपेपर्स, आगरा के लिए प्रकाशित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डेडी आप क्या लिख रहे हैं ?

चैक है, बेटा।

चैक क्या होता है ?

यह बैंक के नाम आदेश है कि अमुख व्यक्ति को रुपया दे दो। मुझे कुछ किताबें खरीदनी हैं। दुकानदार को रुपये की बजाय चैक ही भेज देगा। वह इसे अपनी बैंक में जमा करा देगा। उसकी बैंक इसे

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Price : 75 paise October 1966 Regd. No. L 1410

नीहारिका
कहानी मासिक

दीखा। लेकिन अचानक ही जेटयान की ध्वनि समाप्त हो गयी। धुएं की लकीर टूट गयी। नाथूराम के मन में एक आशंका भर गयी। वह सोचने लगा, शायद कुछ अनर्थ हो सकता है।

तभी जेटयान चक्कर खाने लगा। वह ऊंचाई से तेजी में नीचे आ रहा था। और फिर देखते ही देखते वह पूर्व में एक ढलान की ओर गिर गया। उसके गिरते ही ज़ोरों का धमाका हुआ और आग लग गयी। वह जगह मुश्किल से वहां से पांच सौ गज की दूरी पर थी जहां नाथूराम खड़ा था। वह जलते ब्रिगेड की गाड़ियों की घंटी सुनायी पड़ी। वह अंधेरे में सरक आया।

करीब डेढ़ घंटे के बाद नाथूराम शहर के एक खूबसूरत रेस्तरां में मौजूद था। उसने डायरी में आज की तारीख देखी। पृष्ठ सादा था। उसने पृष्ठ पलटा। पिछली तारीख वाले पृष्ठ पर लिखा था : 'मैं अपने प्रयोग में पूरी तरह सफल हो चुका हूं। कई रोगियों का इलाज कर चुका हूं। लेकिन नाथूराम की जुदाई अखरती है। वह वफादार था। मैं उसे मना लूंगा।'

नाथूराम की आंखों में पानी आ गया। ●

यहां से काटिए

विज्ञान क्लब सदस्यता, विज्ञान-लोक

कृष्णा दीदी,

जन्म-दिन ______________________ आयु __________

नाम ______________________________________

घर का पता __________________________________

____

____

स्कूल का नाम ________________________________

शिक्षा ____________________ रुचि ______________

यहां से काटिए

यहां से काटिए

यहां से काटिए

जगदीश मेहरा द्वारा मेहता आफसेट प्रेस, आगरा में मुद्रित एवं मेहरा न्यूजपेपर्स, आगरा के लिए प्रकाशित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar